...जी द्वारा
प्रवचन
शांन्ति का व...
...पुष्प
5·3 v2
वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि०)
प्रकाशन विभाग :- III ई-३९-लाजपत नगर - ३
नई दिल्ली-२४

बारह...

ट्रैक्ट सं० ३६

कण में व्याप...
रहता हि...
प्रभु को ...

विषय-सूची

पुस्तकें मिलने का पता

१ ए० ३३२, सरोजनी नगर, नई दिल्ली-२३
२. III ई-३१, लाजपत नगर, नई दिल्ली-२४
३ सी० ४०५, सरोजनी नगर, नई दिल्ली-२३
४ स० श्री गोविन्द राम हासानन्द नई सड़क दिल्ली ६
५. देहाती पुस्तक भण्डार चावड़ी बाजार दिल्ली ६
६. श्री मंसा राम योगेश चन्द गांधी गंज, निज़ामाबाद
७. श्री डी० एन० भनोट मैनेजर "मिलाप" हैदराबाद
८. कार्यालय - "संजय" झालरापाटन सिटी,

[॥
सुरक्षित]

ता है, इसके शान्ति का व । जो द्वारा
हिए। जब
पक नाड़ी ह
तु ना
आगे

| दिनांक में

वैदिक प्रवचन

बारहवां पुष्प

प्रकाशक

वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि०)

III - ई - ३१, लाजपत नगर, नई दिल्ली-२४

प्रकाशक :- ओ३म् ।।

वैदिक अनुसन्धान समि तुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कण में व्याप्त
॥। - ई - ३१, लाजपत न: प्रचोदयात् ।। रहता है।
नई दिल्ली २४ प्रभु को ज्ञान
-मच। ता समाहित
ज्ञान

द्वितीय बार २०००, मई १९७३
मूल्य १.२५ पैंसे

मुद्रक :
कृष्णा प्रिंटर्स
१९८/४६ गढ़ी, लाजपत नगर,
(निकट सपना सिनेमा)
नई दिल्ली-२४

शान्ति का वास्तविक मार्ग

[दिनांक ५ मार्च १९६९ को गुजराती प्रगति समाज विद्या मन्दिर हैदराबाद में दिया हुआ प्रवचन ।]

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ नित्य प्रति ज्ञान और विज्ञान का विवेचन होता रहता है। प्रायः मानव के मन में एक जिज्ञासा रहती है कि हम ज्ञानी और वैज्ञानी बने। विज्ञान में भी दोनों प्रकार के विज्ञान की जिज्ञासा रहती है। हम आध्यात्मिक विज्ञान वेत्ता भी बने और भौतिक विज्ञान वेत्ता भी बनें और उस की उत्कट इच्छा यह होती है कि मैं सुख और आनन्द को प्राप्त होता चला जाऊं। प्रायः मानव को ज्ञान और विज्ञान को जानने की उत्कट इच्छा इसलिए होती है कि आनन्द को प्राप्त करने के लिए।

तो मेरे प्यारे ऋषिवरो। हमने कल के वाक्य में भी कहा था कि हमारा जो वेद का ज्ञान है वह चतुष्पाद में वर्णन किया है। वास्तव में जब अनुसन्धान अथवा विचारविनिमय किया जाता है तो उसमें ऐसा ही प्रतीत होता है कि परमात्मा का ज्ञान अथवा उसका विज्ञान महान है क्यों कि उसके ज्ञान में वृद्धपन नहीं होता और न न्यूनता होती है। वह एक रस रहने

वाला है जिस प्रकार परम पिता परमात्मा कण कण में व्याप्त है उसी प्रकार उसका ज्ञान भी कण कण में व्याप्त रहता है। ज्ञान विज्ञान के सहित रहता है। तो हमें उसी प्रभु को ज्ञान लेना चाहिए जिसमें ज्ञान और विज्ञान की महानता समाहित होती है। जब हम अपने प्रभु को जान लेते हैं तो यह ज्ञान और विज्ञान भी हमारे नीचे दब जाते हैं। हम उस दव आनन्द को प्राप्त हो जाते हैं। वह परम आनन्द जब मानव को प्राप्त हो जाता है तो मानव की एक महान प्रतिभा जागृत हो जाती है। वही प्रतिभा मानव के जीवन को उज्ज्वल क्या वह परमानन्द को प्राप्त करा देती है।

तो आओ मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज हम अपने उस प्यारे प्रभु का गुण गान गाते चले जायें। वह प्रभु कितना अलौकिक है। उसकी महानता का वर्णन नहीं किया जाता। उसके उच्चारण करने में अन्त में वाणी असमर्थ हो जाती है। आज हम उस मधुरता को प्राप्त करते चले जायें। बेटा ! हमारी जो रचना है वह कहां होती है, कितनी सुन्दर रचयिता है। माता के गर्भस्थल में वह जीवात्मा विराजमान हो गया है पर-माणुओं को एकत्रित करते हुए मानो वही रचयिता उन परमा-णुओं से आत्मा के शरीर का निर्माण कर देता है। बेटा ! वह कितना सुन्दर है। मेरी प्यारी भोली माता के गर्भस्थल में रचना हो रही है परन्तु माता से दूर है। कितना दूर कितना निकट है ? निकट से निकट है और दूर से दूर है। जब दूरी का प्रश्न आता है तो उसी का नाम अन्तर द्वन्द माना गया है।

आओ मेरे प्यारे प्रभु के गुण गान गाने आज हमें कुछ सौभा-ग्य प्राप्त हुआ है। माता के गर्भस्थल में जब जरायुज आता है वह पनपता रहता है परन्तु दिन दिन नाड़ियों के द्वारा पनपता

रहता है, इसके ऊपर मानव को विचार विनिमय कर लेना चाहिए। जब माता की रसना के निचले विभाग में एक स्वांग नामक नाड़ी होती है और स्वांग नाम की नाड़ी के निचले भाग में किरकेतु नाम की नाड़ी होती है और किरकेतु नाम की नाड़ी के मध्य में आगे चल करके पंचम् नाम की नाड़ी होती है। इन तीनों नाड़ियों का समूह हो करके और रसना के द्वार से रस लेकर के माता की लौरियों में वह रस परिपक्व होता रहता है। जब वह रस पकता है तो माता की लौरियों से पंचम् नाम की नाड़ी चलती है जिसको साघात नाम की नाड़ी कहते हैं। साघात नाम की नाड़ी का सम्बन्ध बालक की नाभि के द्वारा होता। तो नाभि के द्वारा बालक माता के जरायुज में, गर्भस्थल में पनपता रहता है, अपनी आयु को प्राप्त करता रहता है अर्थात् उस आनन्ददायक पदार्थ को प्राप्त करता रहता है। तो वह कितना सुन्दर रचयिता है।

एक ही गर्भस्थल में शरीर बनते हैं, मानव का भिन्न है माता का शरीर भिन्न है। उन दोनों की रचना में भी नाना प्रकार का भेदन है। आज इस रचना पर मैं अधिक बल देने नहीं जा रहा हूं। केवल वाक्यों का अभिप्राय यह है कि वहां कितना कष्ट होता है यह जीवात्मा जानता है क्यों कि जब माता के गर्भ स्थल में हमारे ऋषि मुनियों ने ऐसा कहा है कि वह जो माता पिता का गर्भाशय है उससे मुक्त होने के लिए मानव ज्ञान और विज्ञान के लिए उत्सुक रहता है। उसी के लिए प्रयत्नशील रहता है कि मैं ज्ञान और विज्ञान को जानने का प्रयत्न करूं और उस आनन्द को प्राप्त करूं जिससे मुझे अन्धकार में जाने का अवसर न प्राप्त हो। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम उसी अन्तरद्वन्द से दूर होने के लिए, ज्ञान और विज्ञान में पहुँचना

चाहते हैं। वेद का आश्रय लेना चाहते हैं, कहीं ब्रह्मज्ञानी गुरु का आश्रय लेना चाहते हैं। परन्तु तात्पर्य क्या कि मानव की वास्तविक शान्ति के लिए और परम पिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को जानने के लिए मानव सदैव प्रयत्नशील रहता है। एक ब्राह्मण है; नाना प्रकार की पोथियों को एकत्रित करता है। उनका अध्ययन करता है, नवीन जीवन को प्राप्त करता है। अपने जीवन को उसके अनुसार बना लेता है। किस लिए बनाता है? इसलिए बनाता है कि मुझे यह जो आवागमन का चक्कर है इससे मैं मुक्त हो जाऊं। केवल अभिप्राय एक ही रहता है। इसलिए मेरे प्यारे ऋषियों ने कहा है कि आज हम आनन्द के लिए रमण करने जा रहे हैं। एक राष्ट्र वेत्ता है; वह राजा बनता है; नाना प्रकार के ऐशवर्यों के लिए यदि उससे प्रश्न किया जाता है कि क्या तुम ऐश्वर्यवादी बन गये हो? तो उस समय उसके मुखारविन्द से भी यही उत्पन्न होता है, ज्ञान और विज्ञान की दृष्टि से, कि मुझे कदापि भी आनन्द प्राप्त नहीं हो रहा है मैं तो नाना प्रकार के भोग विलासों में लग गया हूं और मुझे वास्तविक शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! राजा बनता इसलिए है कि मैं आनन्द को प्राप्त होऊंगा, परन्तु नाना प्रकार का वैभव मेरे समीप रहेगा। परन्तु उससे भी मानव को शान्ति प्राप्त नहीं होती। तो शान्ति कहां प्राप्त होती है? मैं उन्हीं वाक्यों को उच्चारण करने के लिए तत्पर रहता हूं कि प्रभु का ज्ञान और विज्ञान को जानने के लिए जब मानव तत्पर होता है और उसको तत्परता से जान लेता है और उसके निकट चला जाता है तो वहां मानव को वास्तविक शान्ति उत्पन्न होने लगती है।

बेटा ! मैं कल के वाक्यों में चला जाऊं जहां मैंने अपना कल का वाक्य समाप्त किया था। कल जो हमारा विवरण चल रहा था कि मन कला, चक्षु-कला, श्रोत कला और घ्राण - कला ब्रह्मा के चतुष्पादों का वर्णन किया जा रहा था। जैसा मुनिवरो ! सोड्स कलाओं के जानने वाले भगवान कृष्ण ने अपने जीवन में किसी प्रकार का पाप कर्म नहीं किया। वह इतने महान थे। क्यों नहीं किया ? यह प्रायः होता है कि जब मानव संसार में आता है तो पाप भी करता है और पुण्य भी करता है। क्योंकि यह शरीर ही उसे पाप-पुण्य कर्म करने के लिए प्राप्त होता है ! भगवान कृष्ण इतने महान थे, अपने कर्यों में इतने दक्ष थे ज्ञान और विज्ञान में पारांगत थे कि वह किसी कार्य को करने के पश्चात् उस पर पश्चाताप नहीं होता था। नम्रता की उनमें प्रतिभा थो। बेटा ! तुम्हें स्मरण होगा जब इन्द्रप्रस्थ में यज्ञ हुआ था।

जिस समय यज्ञ का कार्य क्रम बनने लगा कि कौन -कोन मनुष्य क्या क्या कार्य करेगा तो युधिष्ठर जो से कहा कि महाराज आप तो यज्ञ दृष्टिपात करते रहो, अर्जुन से कहा कि तुम सेवा करो, भीम से कहा कि तुम अस्त्र - शस्त्रों को नियुक्त करो और शकुनी से कहा की तुम पशुओं के भोजन के प्रति हो इसो प्रकार द्रव्य का स्वामी महाराजा दुर्योधन को बनाया। जब सब चुन लिये, महाराजा युधिष्ठर कृष्ण से बोले कि महाराज आप क्या करेंगे ? वह बोले कि मैं वह कार्य करूंगा, जो मैं सदा परम्परा से करता चला आया हूं; उसी कार्य को मैं कर पाऊंगा। उन्होंने कहा कि महाराज क्या करोगे ? उन्होंने कहा कि यज्ञ में जो अतिथि आयेंगे, में उनके चरणों को जल से स्पर्श करके आचमन करूंगा। अभिप्राय

क्या है उच्चारण करने का ? कि मानव जितना भी गम्भीरता में, विवेक में चला जाता है उतनी ही उज्ज्वल उसकी प्रतिभा होती चली जाती है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! मैं भगवान कृष्ण की चर्चा करता चला जा रहा था। वह कितने बड़े विज्ञान में रमण करते थे। कितना विज्ञान उनके समीप था ? वह जानते थे कि पृथ्वी में क्या है, अन्तरिक्ष के परमाणु क्या कह रहे हैं। जो मानव विज्ञान के आश्रित हो करके वायु मण्डल की तरंगों को जानने लगता है वही तो संसार में विज्ञानवेत्ता कहलाया जाता है। आज मैं इस वाक्य को अधिक दूर नहीं ले जाना चाहता। वाक्य यह प्रारम्भ करने जा रहे थे कि हमारा कल का वाक्य क्या कहता चला जा रहा था। कल का वाक्य कहता चला जा रहा था कि हम मन,कला को जानने का प्रयास करें। मन-कला,चक्षु कला, श्रोत-कला और घ्राण-कला जिसे प्राण-कला भी कहते हैं, जानने का प्रयास करें।

मेरे प्यारे ऋषिवर ! मुझे स्मरण है एक समय महर्षि कपिल मुनि महाराज शान्त मुद्रा में विराजमान थे और लेखनीबद्ध करने लगे, तो उस समय यह विचार विनिमय होने लगा कि मैं लेखनीबद्ध करने तो जा रहा हूं, परन्तु लेखनीबद्ध मैं क्या करूं ? लेखनी के लिए मेरे द्वारा है क्या ? तो विचार विनिमय हुआ कि वास्तव में मुझे ज्ञान और प्रयत्न दोनों के ऊपर टिप्पणी करनी चाहिये, जिसका विभाजन होता है और जो विभाजन करता है। अब तक जो मैंने मन्थन किया है मुझे परमात्मा की सृष्टि में दो ही वस्तु प्रतीत होती हैं एक विभाजन जो करता है और एक जिसका विभाजन होता है। इसके पश्चात् महर्षि कपिल जी ने लेखनीबद्ध करते हुए कहा कि दो ही वस्तु

हैं: मन और प्राण। दोनों के ऊपर विचार विनिमय होने लगा कि मुझे तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि मानव का विकास कैसे होता है। वास्तव में तो उसे मृत्युवाद कहना चाहिए। परन्तु मानव उसे विकासवाद कहता है। कपिल जी कहते हैं कि मानव का विकास कैसे हुआ? उन्होंने कहा कि संसार में जब यह जीवात्मा आता है, मानो जब यह शरीर प्राप्त होता है, तो शरीर प्राप्त होते ही इस शरीर में एक क्रिया है, मानो एक बिन्दू है, उस बिन्दू के दो विभाग हो जाते हैं-एक को हम ज्ञान कहते हैं और द्वितीय को प्रयत्न कहते हैं, ज्ञान और प्रयत्न दोनों उत्पन्न हो गये। अब जिसको हम प्रयत्न कहते हैं इसका माध्यम तो प्राण बन गया और जिसको ज्ञान कहते हैं इसका माध्यम मनीराम बन गये। अब दोनों की परिक्रियायें शरीर में सुचारु रूप से होने लगीं। क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि जहां भी ज्ञान होता है वहां कामना उत्पन्न होती रहती है। मनीराम के द्वारा कामना की उत्पत्ति होने लगी। अब जब कामना ओत प्रोत हो गईं, तो अब उसका पूर्ण होने का कोई न कोई साधन होना चाहिये। जब ज्ञान के द्वारा कामना उत्पन्न हो गईं तो यह जो प्रयत्न है, जिसको प्राण कहते हैं, इसको धाराएं प्रारम्भ होने लगीं। सबसे प्रथम प्राण की ५ प्रकार की धारएं बनीं-प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान। जब पांच प्रकार की धाराएं बन गईं तो मनीराम का कर्त्तव्य ही था जहां ज्ञान होता है वहां कामना उत्पन्न होना स्वभाविक ही है। तो कामना उत्पन्न होने लगी। अब जब कामना आ गईं तो पूर्ण कहां हो? अब इन्हीं पांचों प्राणों के पांच उपप्राण बन गये — नाग, देवदत्त, धनज्जय, कूर्म और किकल। यह पांच उपप्राण बन गये। अब इनको कार्य अर्पित कर दिया। प्राण के कार्य की नाभि

केन्द्र से चलो, नाभि से चल कर घ्राण के द्वारा नाना प्रकार के परमाणु लाओ और यहां से दुर्गन्ध भरे परमाणुओं को ले जाओ और वास्तविक सुन्दर परमाणु ले आओ। यह प्राण को कार्य दिया? अपान को कहा कि तुम्हारा सम्बन्ध पृथ्वी से है मानो तुम देखो जो भी अवृहीण होता है, इसमें मृत्यु समाहित रहती है, तरंगत समाहित रचना है। मानो इसका पृथ्वी से सम्बन्ध हो गया कि पृथ्वी से गन्ध लाओ और दुर्गन्ध को त्यागते रहो। यह कार्य अपान का हो गया। इसी प्रकार व्यान कण्ठ में रहता है। हम जो भी कुछ आहार करते हैं तो व्यान वायु का कार्य है कि वह उनको ले जा कर के उदर में परिणित कर देता है। जिसे हम उदान कहते हैं वह उदान-प्राण उसका रस बना देता है, परिपक्व बना देता है और वह सामान्य प्राण को अर्पित किया जाता है। मानव के शरीर में ७२,७२,१०,२०२ नाड़ियां प्रभु ने रची हैं। प्रत्येक नस नाड़ी में वह रस अपनी गति करने लगता है। इस प्रकार हमारे यहां यह पांचों प्राण माने गये हैं। उसके ऊपर पांच उपप्राण हैं। नाग का कार्य है कि जब मानव को क्रोध आता, क्रोध की अति मात्रा आती है, तो यह नाग प्राण अमृत को निगल जाता है और विष को उगल देता है। मानो क्रोध द्वारा मानव की शक्ति नष्ट-भ्रष्ट होती रहती है। इसी प्रकार देवदत्ता का कार्य है। परन्तु मैं इसका संक्षिप्त परिचय देने जा रहा हूं।

इस प्रकार जब यह दस प्राण बन गये, अब प्राण में इतनी गति नहीं थी कि विभाजन और हो सकते थे। परन्तु यही दस प्रकार का विभाजन हो गया। विभाजन होने के पश्चात् वह जो मनोराम था, वह तो स्वभाव से कामना उत्पन्न करने वाला था। शरीर में कामना उत्पन्न करता रहा। उसके पश्चात्

देखो पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्म इन्द्रिय बन गईं। उनके भिन्न-भिन्न कार्य हो गये। मानो चक्षु को दृष्टि का कार्य, श्रोत्रों को शब्दों का, घ्राण को दुर्गन्ध-सुगन्ध का, और प्रत्येक इन्द्रिय को अपना अपना कार्य परिणित कर दिया। जब उनको कार्य अर्पित कर दिया तो वह अपना कार्य करने लगे। कामना उत्पन्न होती रही और कामना उत्पन्न होने से उन इन्द्रियों का बाहरी स्वरूप बन गया। इन्द्रियों का जब बाहारी स्वरूप बन गया तो और भी कामना उत्पन्न हुईं। उस कामना के उत्पन्न होने पर आगे चल करके तृष्णा बन गई। जब तृष्णा बन गई, अब तृष्णा ऐसी महान् कलंकिनी है कि मानव के समीप जब तृष्णा उत्पन्न हो जाता है तो यदि आज्ञा के अनुकूल मानव का कार्य हो जाता है मानव को तृष्णा के पश्चात् अभिप्राय आता है और यदि आज्ञा के अनुकूल कार्य न होता तो उस समय क्रोध उत्पन्न हो जाता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! देखो यहां मान और अपमान भी उत्पन्न हो गये। जब मान और अपमान उत्पन्न हो गये। अब उससे काम की धाराएं उत्पन्न हो गईं। आगे चल करके उसी से मोह आ गया. देखो एक नवीन परिवार बन गया। इसलिए आज हमें यह विचार विनिमय करना है कि यह जो हमारा घृणित परिवार बन गया है इस घृणित परिवार से हमें पार होना है, इससे हमें दूर होना ह। परन्तु इस घृणित परिवार से वही मानव पार हो सकता है जिसको न तो मान है, न अपमान है। यदि मान और अपमान दोनों होंगे तो मानव में मोह इत्यादि नाना प्रकार की वस्तुयें उत्पन्न हो जाती हैं।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम क्या उच्चारण करने चले आये। महर्षि कपिल जी ने कहा है कि इसी प्रकार मानव को

विचार विनिमय करना चाहिये। आज मानव को संयमी बनना है। इसीलिये कई वाक्यों से उच्चारण करते चले आये हैं कि मानव को संयमी बनना है। संयमी कैसे बनोगे। सबसे प्रथम कामना को शान्त करना होगा, जो मानव मुक्ति अथवा परमानन्द को प्राप्त करना चाहता है, उस मानव की जो कामना है और कामना में जो विडम्बना है, कामना में जो मधुपन है इस सबको विचार विनिमय करना होगा। विचार विनिमय करके सबसे प्रथम कामनाओं को शान्त करना होगा। वह किसी भी प्रकार की कामना हो मानो वह हमारी लोक को कामना हो, परलोक की कामना हो। क्योंकि कामना होगी तो संस्कार उत्पन्न होंगे और संस्कार उत्पन्न होंगे तो आवागमन भी स्वाभाविक बन जाता है। तो इसिलिये आज हमें विचार विनिमय करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हम इनके ऊपर विचार विनिमय करें कि यह क्या है। हमें मुक्ति के द्वार पर जाना है। मुक्ति हमें कैसे प्राप्त होगी क्योंकि यह तो मानव के शरीर में एक महात् परिवार बन गया है। कोई मानव जीवन-मुक्त होना चाहता है, कोई मानव यह चाहता है कि मुझे परमानन्द प्राप्त हो जाये, जिसको परम मुक्ति कहते हैं वह भी चाहता है परन्तु यह सब कुछ कैसे प्राप्त होंगे ? कपिल जी ने कहा है कि हम सबसे प्रथम मान अपमान पर संयम करें।

मान-अपमान क्या है ?

इसको विचार लो। यदि मान आयेगा तो वह भी हमारी मृत्यु का कार्य करेगा और अपमान आयेगा वह भी हमें मृत्यु में ले जायेगा। तो यह दो अज्ञानता के द्वार हैं। मान और अपमान को त्याग करके शान्त मुद्रा में विराजमान हो जाना

चाहिए। क्योंकि वह जो तृष्णा का केन्द्र है, मान अपमान का केन्द्र है वह मनीराम है। इस मन को हमें शोधन करना है। यह जो ज्ञान के आसन पर विराजमान है (अर्थात् जीवात्मा) ज्ञान ही ज्ञान चाहता है। परन्तु यह जो प्रतिष्ठा पाये हुए हैं (अर्थात् मनीराम) इस पर संयम करना है। इन पर संयम कसे करोगे ? यह जो मनीराम है और इससे जो दूसरी शक्ति है जो इससे प्रबल है, उसमें इस मनीराम को सुगठित कर दो। उसी में लय कर दो। वह किस प्रकार करोगे ? जब मान अपमान नहीं रहेगा तो तृष्णा पर संयम हो जावेगा। जब तृष्णा नहीं होगी, तो जो वह ज्ञान और प्रयत्न दोनों में अन्तरद्वन्द्व है उस पर संयम होना स्वाभाविक हो जायेगा। ज्ञान की जो धारा है वह मानो आवागमन के आंगन पर अर्थात् मन की प्रवृत्तियों पर रमण कर देनी चाहिए।

मन से शक्तिशाली संसार में कौन है ? मन से शक्तिशाली संसार में प्राण हैं और कोई वस्तु नहीं है। क्योंकि एक प्राण ही ऐसा है जो मन को अपने वशीभूत कर सकता है अन्यथा और कोई भी इसका ऐसा आश्रय नहीं है जहां यह मन शान्त हो जाये। तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! प्राण के विज्ञान में, प्राण के विभाजन में इस मनीराम को सुगठित कर देना चाहिए। जब यह तृष्णा एकाग्र (अर्थात् क्षीण या निर्मूल हो जाता है, इन्द्रियों के जो विषय हैं यह शान्त हो जाते हैं क्यों कि मन का इनसे विच्छेद हो जाता है, यह इन्द्रियां शून्य हो जाती हैं, काम से रहित हो जाती हैं। जब यह शून्य हो जाती हैं तो उस को समाधी कहते हैं। हमारे यहां देखो लघु-मस्तिष्क में जब प्राण और मनीराम दोनों सुगठित होकर के चले जाते हैं अर्थात अपना अपना कार्य करते हैं तो उसके पश्चात् वहां

इन्द्रिय शून्य हो जाती हैं और इन्द्रियों के शून्य होने पर जो नाग, देवदत्त, धनञ्जय आदि पांच उपप्राण हैं यह सुगठित हो जाते हैं और इससे आगे जो पांच मुख्य प्राण हैं वह भी सुगठित हो जाते हैं और वह जो ज्ञान और प्रयत्न दोनों धारा बन गईं थी उन दोनों को एक मिलाने के पश्चात् मानव को मुक्ति का द्वार प्राप्त हो जाता है उसी को हमारे यहां मुक्ति कहते हैं, ऐसा कपिल जी ने कुछ वर्णन किया है। ज्ञान और प्रयत्न दोनों के मध्य से जब अन्तर्द्वन्द्व समाप्त हो जाता है तो उस समय कारण से कार्य-कार्य और कारण बेटा! दोनों एक ही रूप में परिणित किये गये हैं। कारण से कार्य कदापि भिन्न नहीं होता।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आओ आज हम अपने प्यारे प्रभु की चर्चा करते चले जावें। विचार विनिमय में यह आता है कि वह जो अन्तर्द्वन्द्व आया है, मानो दोनों को जो भिन्न भिन्न करने वाला है, वह कौनसी शक्ति है। गम्भीर जो व्यक्ति होते हैं, यौगिक जो पुरुष होते हैं उनके हृदय में एक इसी प्रश्न को ले करके आगे चल कर धारा प्रारम्भ हो जाती है। जब मानव का शरीर प्राप्त हुआ तो दो धाराएं बनीं ज्ञान और प्रयत्न। एसी कौन सी शक्ति थी जो दोनों को एक से द्वितीय भाव उसमें जगा गया। वह कौन था ऐसा? अन्तर्द्वंद्व वह क्यों आया? तो बेटा! आगे ऋषि ने कहा है कि इसके ऊपर मानव जब शान्त हो जाता है, विचार विनिमय में होता है, तो यह मानव वाणी से इसको वर्णन करने में असमर्थ हो जाता है तो यह जो अन्तर्द्वंद्व आता है इस पर विचार-विनिमय होता रहता है। कोई मानव कहता है कि प्रकृति से आता है। मानो जब प्रकृति जीवात्मा के निचले

भाग में स्वीकार करते हैं तो उससे अन्तर्द्वंद्व कैसे आ सकता है और यदि हम ब्रह्म के अन्तर्द्वन्द्व स्वीकार करते हैं तो बेटा। वहां तो प्रकाश है। वहां अन्तर्द्वन्द्व का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अन्त में यह एक ऐसा गहन विषय आ जाता है कि मानव को यह उच्चारण करना होता है कि इसके ऊपर केवल मानो अनुभव कर सकता है यह मानव की वाणी का विषय नहीं रह जाता।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम कहां चले गये। वाक्य उच्चारण करते करते बहुत दूर चले गये। वाक्य प्रारम्भ यह हो रहा था कि साधारण रूपों से हम अन्त में इस वाक्य को क्यों ले जायें, क्योंकि यह वाक्य तो समाधिष्टों का है, साधकों का है, विचारकों का है और उन विचारकों का जो स्वयं अपने में अनुभव करते हैं, वह शब्दों का विषय नहीं, शब्दों से उसका उच्चारण भी नहीं किया जाता बेटा! कपिल जी ने जब यह विचारा कि मुझे तो संसार में दो ही वस्तुयें प्रतीत होती है ज्ञान और प्रयत्न और दोनों के रूपों से यह संसार चल रहा है। अब तृतीय वस्तु मुझे ब्रह्म कोई प्रतीत नहीं होता। ब्रह्म कोई वस्तु नहीं। जब कपिल जी ने यह विचारा तो कपिल जी के गुरु देव आ गये। गुरु जी ने कहा कि अरे! कपिल जी शान्त मुद्रा में क्यों हैं? उन्होंने कहा कि प्रभु मेरी तो तार्किक गति बन गई है और मैंने यह निश्चय किया है कि संसार में प्रभु नहीं है यह तो केवल मानव के लिये एक उच्चारण करने के लिये है क्योंकि संसार में तो मुझे ज्ञान और प्रयत्न ही प्रतीत हो रहा है। जो वस्तु विभाजन होती है और जो कर्त्ता है; वही दो वस्तु मुझे प्रतीत हो रही हैं; तृतीय वस्तु कोई नहीं।

मुनिवरो ! उस समय ऋषि ने कहा कि अरे कपिल जी अब तुम तपस्या करो, क्योंकि तुम तर्क में तो चले गये। परन्तु तर्क करने के लिये तपस्या की आवश्यकता होती है। जो तुमने जाना है इसके ऊपर तपस्या करो; अनुरुन्धान करो और तपस्वी बन करके मौन होकर के विचार विनिमय करोगे, तो तुम्हारे द्वार से यह अन्तर्द्वन्द भी समाप्त हो जायेगा। उसके पश्चात उन्होंने तपस्या की और तपस्या करने के पश्चात अन्त में कपिल जी ने नेतिः नेतिः कहा कि आगे वह अनुभव का विषय रह जाता है, लेखनी का विषय नहीं।

मेरे प्यारे ऋषिवर ! मैं महर्षि कपिल जी की कुछ चर्चायें प्रकट कर रहा था। आज मुझे इतना समय तो प्रदान नहीं किया जा रहा था केवल सूक्ष्म समय था, मैंने सूक्ष्म इनका परिचय कराया है। आज हमें विचार विनिमय करने का सौभाग्य मिला कि मानव के जीवन का विकास बाहरीय कैसे बनता है। यह सूक्ष्म सी मैंने चर्चायें प्रकट की हैं कि मानव जो बाहरीय जगत में आता है, इस मनीराम के कारण से आता है, यही इसको लाने वाला है, और यही बाहरी जगत से आन्तरिक जगत में ले जाता है। इसीलिये इसको जानना मानव का सदैव कर्त्तव्य है और इसी को कर्त्तव्यवाद में लेजा करके इसी से मानव को परमानन्द और परम शान्ति प्राप्त होती है। तो शान्ति किस काल में प्राप्त होती है ? जब ज्ञान होता है और यज्ञ भी शुद्ध और पवित्र होता है। उस समय मानव को वास्तविक शान्ति प्राप्त होती है मानो ज्ञान का ही वस्त्र होता है, ज्ञान का ही भूषण होता है, ज्ञान का ही उसका मार्ग होता है और ज्ञान का ही उनका सर्वस्व शरीर

होता है उस समय वह मानव परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आजका हमारा वाक्य क्या कहता चला जा रहा था कि हम प्रभु की महिमा का गुण गान गाते चले जायें। और मानव को यह भी विचार विनिमय करना चाहिये कि यदि मानव ज्ञान के क्षेत्र में नहीं जाना चाहता विचार विनिमय करने का सौभाग्य मानव को प्राप्त नहीं होता तो मानव यह न विचारे कि जो मैं कर्म करता हूं वह मुझे नहीं भोगना होगा। क्योंकि मानव जो भी कर्म करेगा शुभ करो, अशुभ करो, दोनों को भोगना उसके लिये अनिवार्य है। इसीलिये मानव के लिये सूक्ष्म चर्चा की कि तुम विचार विनिमय करो, अपने मानव शरीर को जानने का प्रयास करो। यह हमारा मानव शरीर है क्या ? इसमें वास्तविकता है क्या ? यह कैसे परमाणुओं से सुगठित होने वाला शरीर, कितना सुन्दर लेपन है, कितने सुन्दर चक्षु हैं, प्रत्येक इन्द्रिय प्रभु ने कितने ज्ञान और विज्ञान से रची हैं परन्तु इन्हें बाहरिय और आन्तरिक रूप दोनों से जानना, यह मानव का कर्त्तव्यवाद कहलाता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज मानव को यह विचार विनिमय नहीं करना चाहिए कि जो हम कर्म करते हैं यह हमें नहीं भोगना होगा। यह भोगना अनिवार्य है क्योंकि जैसा भी तुम कर्म करोगे वैसा ही भोगना है। इसके ऊपर बेटा ! मुझे एक वार्त्ता स्मरण आती चली जा रही है जो पूर्व काल में भी मैंने इस वार्त्ता को प्रकट कराया है आज भी स्मरण आती चली जा रही है।

एक समय बिना समय के वृष्टि हो गई। प्रजा में त्राहिमाम् त्राहिमाम् हो गई। ब्राह्मणजनों ने कहा कि हम किसको उपदेश दें, किसके द्वारा ज्ञान की वर्षा करें, क्योंकि यहां तो अनावृष्टि हो गई और वैश्यों ने कहा कि हमारी सर्वस्व सम्पति समाप्त हो गई। क्षत्रियों ने कहा कि किसकी रक्षा करें और शुद्रों ने कहा कि हम किसकी सेवा करें यहां तो सर्वस्व समाप्त हो गया। प्रजा में त्राहिमाम् त्राहिमाम् हो गई, तो प्रजा का समूह बना। वह प्रजापति के द्वार पर जा पहुंचे और कहा कि महाराज! हम आपके आसन को पवित्र करने नहीं आये हैं हम तो अपनी कुछ पुकार लेकर आये हैं कि हमारा सर्वस्व समाप्त हो गया है, विनाश को प्राप्त हो गये, हमारा जीवन किस प्रकार चलेगा। उन्होंने कहा कि कारण उच्चारण करो। तो उन्होंने कहा कि महाराज बिना समय के वृष्टि हो गई है हमारी सर्वस्व सम्पत्ति नष्ट हो गई है। प्रजापति ने कहा कि कहो यह वृष्टि कहां से हुई उन्होंने कहा कि यह वृष्टि तो मेघों से आई है। अब प्रजापति ने मेघ मण्डलों को निमन्त्रित किया और सभा में नियुक्त किया गया और कहा कि अरे मेघ मण्डलों! तुम तो बड़े स्वच्छ और पवित्र हो क्योंकि जल का रूप हो सतोगुणी होता है, यह मानव की नाना कामनाओं को भी शान्त कर देता है, यह तुमने क्या किया कि अनावृष्टि करके प्रजा का विनाश कर दिया।

प्रजापति से मेघ मण्डलों ने कहा कि भगवन्! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मेरे से तो महाराजा इन्द्र ने कहा था इन्द्र ने आज्ञा दी, मैंने वृष्टि कर दी। अब प्रजापति ने मेघों को तो शान्त कर दिया और निमन्त्रण देकर इन्द्र को सभा में नियुक्त किया गया और कहा कि अरे इन्द्र! यह बिना समय के वृष्टि

की इच्छा मेघ मण्डलों से क्यों प्रकट की। उन्होंने कहा कि भगवन्! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, क्यों कि मुझ से तो मेरी पत्नि सचिव ने कहा था। अब प्रजापति ने इन्द्र की पत्नि सचिव को निमन्त्रण दिया और उनको सभा में लाया गया। सभा में प्रजापति ने जब यह प्रश्न किया कि हे सचिव! तुम तो जगत माता हो और जगत में भ्रमण करने वाली हो, शान्त-वना देने वाली हो, क्या कारण है जो तुमने पति को वृष्टि की इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा इसमें भगवन्! मेरा कोई दोष नहीं है। मेरे से तो समुद्रों ने कहा था अब प्रजापति ने समुद्रों को निमन्त्रण दिया और सभा में नियुक्त किया गया और उस के पश्चात् प्रजापति ने कहा कि अरे समुद्रों! यह तुमने बिना समय के वृष्टि की इच्छा क्यों प्रकट की। उस समय समुद्रों ने कहा कि भगवन्! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, मेरे से तो आदित्य ने कहा था।

मुनिवरो देखो! अब प्रजापति ने आदित्य को निमन्त्रण दिया और आदित्य से कहा कि यह तुमने बिना समय के वृष्टि की इच्छा क्यों प्रकट की है। उन्होंने कहा कि भगवन्! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मेरे से तो पृथ्वी माता ने कहा था। अब प्रजापति ने पृथ्वी माता को निमन्त्रण दिया और सभा में लाया गया। प्रजापति ने कहा कि हे पृथ्वी! तुमने बिना समय के वृष्टि की इच्छा क्यों प्रकट की। तो पृथ्वी माता ने कहा हे भगवन्! मैं क्या करूं? जब यह प्रजा मेरे ऊपर पाप कर्म करने लगती है और जब मैं पाप में सन जाती हूं तो उस समय मेरी इच्छा होती है कि मैं जल में स्नान करूं। तो भगवन्! मेरी जो वेदना है, मेरी जो पाप भरी पुकार है आदित्य तक जाती है- आदित्य नाम सूर्य का है। सूर्य से भगवन्! तेज का

उत्थान होता है। तेज समुद्रों में जाता है और उसी तेज से जल का उत्थान होता है और उसी से मेघ मण्डल बनते हैं।

मुनिवरो देखो! जलों का उत्थान समुद्रों से हुआ। उससे मेघ मण्डल बने। सचिव नाम विद्युत का है और इन्द्र नाम वायु का है। इन तीनों का जब संघर्ष होता है तो धीमी-धीमी वृष्टि होने लगती है। उसी वृष्टि के द्वारा जब कहीं प्रजा के पाप होते हैं वहां अति वृष्टि हो जाती है और कहीं अनावृष्टि हो जाती है। प्राय यह होता है प्रजा के कर्मों के द्वारा। तो पृथ्वी माता ने कहा कि भगवन्! जब मेघ मण्डलों से वृष्टि होती है तो उसमें मैं स्नान कर लेती हूं और प्रजा अपने किये हुए पाप पुण्य कर्मों का फल भोग लेती है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हमें विचार विनिमय यह करना है कि मानव ने यदि अपनी शान्ति के लिये प्रयत्न नहीं किया, मानव जो भी कर्म करता है उसे भोगना अनिवार्य है और भोगा ही जायेगा। आज हम वास्तव में अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए अपनी मानवियता की प्रतिभा को जानते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। हमें आत्मिक शान्ति को विचारना है क्योंकि आत्मा में शान्ति होना बहुत अनिवार्य है। कल मेरे प्यारे महानन्द जी अपनी कुछ वार्त्ता प्रकट करेंगे। इनका वाक्य भी बड़ा गम्भीर होता है। कटु तो होता है परन्तु सत्यता से सना होता है। तो आज का हमारा वाक्य कहता चला जा रहा है कि हम अपने जीवन को वास्तविक उन्नतशील बनायें, पवित्र बनायें जिससे हम आत्मोन्नति प्राप्त करके परम शान्ति को प्राप्त करते रहें!

तो आज के वाक्य का अभिप्राय यह है कि आज मानव मानव से शान्त होकर के पाप कर्म कर सकता है परन्तु

परमात्मा जो सर्वव्यापक है उससे शान्त होकर के मानव कोई भी पाप कर्म नहीं कर सकता। हमें विचारना है कि हम सर्वस्व प्रभु को दृष्टिपात करें, कण कण में जब हम प्रभु को दृष्टिपात करते हैं तो मानो मानव पाप कर्म नहीं करता मानव पाप उस काल में करता है जब परमात्मा को अपने से दूर कर देता है। और दूर क्यों कर देता है? केवल अज्ञानता के वश क्योंकि प्रभु को जानता नहीं। जो मानव प्रभु को जानता है वह पाप नहीं करता। पाप वही मानव किया करता है जो प्रभु से दूर हो जाता है। जो प्रभु के कण कण में, मनों में, चक्षुओं में, श्रोत्रों में प्रत्येक इन्द्रिय में प्रभु की प्रतिभा स्वीकार करता है जिसने जो वस्तु बनाई है वह उसमें रमण भी कर रहा है और जब मानव को यह निश्चय हो जाता है तो वहां मानव पाप नहीं करता। यह है आज का हमारा वाक्य। आज के वाक्यों का अभिप्राय कि हे मानव! आज तू अपने पापों से स्वयं भयभीत हो। क्योंकि मानव को स्वयं अपने ऊपर दया करनी होगी। मानव जब अपने ऊपर दयालु बन जायेगा उस समय उसे स्वयं शान्ति होगी। दूसरों पर दयालु मत बनो, सबसे प्रथम अपने पर दयालु बनो। अपने पर दयालु कौन प्राणी बनता है और किस काल में बनता है? जब उसे अपने ऊपर पूर्ण आत्म विश्वास हो जाता है, आत्म संयमी हो जाता है। इन्द्रियों पर संयम हो जाता है। वह मानव अपने ऊपर स्वयं दया करता है। जो परमात्मा को अपने शरीर में कण कण में स्वीकार करता है और उसकी इस प्रकार की प्रतिभा बन जाती है तो जानो की वह मानव स्वयं अपने ऊपर दयालु बन गया है और जब मानव स्वयं दयालु बन जाता है तो शान्ति उसके हृदय में आ समाहित होती है और वह उस आनन्द

को अनुभव करने लगता है जहां उसे जाना है; जिसे पारलौकिक कहते हैं क्योंकि परलोक को जाना है, भौतिक लोक को त्यागना है। कल मुझे समय मिलेगा तो कल मैं कुछ आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान की चर्चा प्रकट कर सकूंगा। कल मेरे प्यारे महानन्द जी भी अपने कुछ वाक्य प्रकट कर सकेंगे। आज अब यह समय समाप्त होने जा रहा है। अब वेदों का पाठ होगा। शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे। मानव को स्वयं अपने ऊपर दया करनी होगी और यदि दया न करोगे तो मानव इसी आवागमन में रमण करते रहोगे, जीवन में शान्ति नहीं आ पायेगी। इसीलिए आज का वाक्य समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। पश्चात् यह वाक्य समाप्त।

त्यागी व ब्राह्मणों के लिए महानन्द को वेदना

यह प्रवचन दिनांक ६ मार्च १९६९ को गुजराती प्रगति विद्यालय हैदराबाद में दिया।

जीते रहो।

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमें उस परम पिता परमात्मा की अनुपम कृपा से उन ऋषि मुनियों की विचारधारा को मन्थन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिनका सर्वस्व जीवन यौगिकता में प्रायः रमण करता रहता था। क्योंकि जो आत्मवेत्ता पुरुष होते हैं उनके द्वारा संसार की विचारधारायें प्रायः पवित्र बना करती है, उनकी आत्मा सदैव पवित्र रहती हैं। हमारे ऋषि मुनियों ने दो प्रकार के महापुरुषों को चर्चाएं की हैं। एक तो वह महापुरुष होते हैं जो जनता में ही जनार्दन को दृष्टिपात करते रहते हैं। एक वह पुरुष होते हैं जो ब्रह्म में समाविष्ट हो जाते हैं और उसके पश्चात् मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। हमारा वेद का ऋषि कहता है "ब्रह्मा व्यापाम् व्यापकम् रहिनश्तत् प्रभा वसनध्यम् ब्रह्म व्यापा गृति रुद्राः" यह महर्षि शृङ्गकेतु शाखा का मन्त्र है। इसमें हमें यह प्रतीत होता है कि मानव का जो जीवन है, मानव का जो धर्म है वह है व्यापकता, क्योंकि

मस्तिष्क में जब तक व्यापकता ओत-प्रोत नहीं होता तब तक मानव अपने उस निश्चय मार्ग पर नहीं पहुंच पाता जहां के लिए उसे परम पिता परमात्मा ने उत्पन्न किया है। यहां प्रायः मानव के मस्तिष्क में संकीर्ण विचार ओत-प्रोत होते चले आते हैं जैसा अभी अभी मेरे प्यारे महानन्द जी अपने विचारों में कुछ प्रकाश देंगे। मैं आज राष्ट्रवाद की चर्चा प्रकट करने नहीं आया और न सम्राज कौर वर्त्तमान समय को चर्चा करने आया क्योंकि यह तो आज मेरे प्यारे महानन्द जी अपनी कटुता को त्याग कर अपना प्रकाश देंगे। हम तो केवल इतना उच्चारण करना चाहते हैं कि समाज में दो प्रकार के महापुरुषों की कल्पना कर लेनी चाहिये। वह दोनों प्रकार के महापुरुष एक जनता में जनार्दन में समाविष्ट रहते हैं और द्वितीय वह होते हैं जो ब्रह्म में समाधिष्ट हो जाते हैं परन्तु जो अपनी आत्मा में हवि देते हैं, और आत्मा में ही हव्य पदार्थों को ओत प्रोत करते हुए ब्रह्म को सदैव दृष्टिपात करते हुए ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। वह ब्रह्म में लीन नहीं परन्तु ब्रह्म में समाधिष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार जो जनता में जनार्दन वाले पुरुष होते हैं वह द्रष्टा होते हैं। उनको हमारे यहां महर्षि कपिल जी ने :'ऋष्टम् ब्रह्म अप्राप्त रुद्रा कृति' कहा है। कपिल जी के विचारों को लेकर के जब हम प्रायः विचार विनिमय करते हैं तो महर्षि कपिल जी ने जनता में जनार्दन वाले महापुरुष के लिए एक ही वाक्य कहा है कि वह जो महापुरुष होते हैं वह इष्टी कहलाते है क्योंकि उनका जो इष्ट है वह परम पिता परमात्मा को कण कण में स्वीकार करना, प्रत्येक प्राणी के हृदय में उनको विंचारना और उन्हीं में संलग्नता रहना, त्रुटियां जो होती हैं उनको निकालने का प्रयत्न करना

और अपने ऊपर उनको न आने देना वह जनता में जनार्दन महापुरुष होते हैं क्यों कि जनता जनार्दन उनके लिए ब्रह्म के रूप में प्रतीत होती रहती है। उसी में उनका आत्मा इतना उन्नत हो जाता है कि वह जो उच्चारण करते हैं वह राष्ट्र से लेकर के साधारण प्रजा के लिए या तो वह मानना अनिवार्य हो जाता है अन्यथा उसके भौतिक पिण्ड को नष्ट भ्रष्ट कर [illegible] जाता है। अब मैं अपने प्यारे महानन्द जी से उच्चारण [illegible] गा कि वह अपनी कुछ वार्त्ता प्रकट करें और कटुता को त्याग करके।

ओं शैनः कृति विश्वा रहि गृत्याम मनुश्न्चामनगृहे देवम् भागाः।

मेरे पूज्यपाद गुरु देव! ऋषि मण्डल! मुझे मेरे पूज्यपाद गुरु देव ने आज एक अमूल्य समय दिया। यह दो प्रकार के महा पुरुषों की चर्चा प्रकट कर रहे थे। इनका विचार आत्मोन्नति के लिये प्रायः होता है। मैंने अपने विचार अपने पूज्य गुरुदेव को प्रकट किये। उन्होंने यह अमूल्य समय प्रदान किया। प्रायः मानव के हृदय में आशंकाएं रहती हैं मानव को कहीं द्रव्य की शंका रहती हैं, कहीं पदों की शंकाएं रहती हैं कहीं मानव को अपनी प्रतिष्ठा की शंकाएं रहती हैं। कहीं नाना प्रकार की शंकाओं में मानव सदैव संलग्न रहता है। जब मैं यह विचार विनिमय करता रहता हूं कि आधुनिक काल का जो मानव है इसकी विचार धाराएं कहां जा रही हैं तो मुझे यही प्रतीत होता है कि इनकी विचारधाराएं शनैः शनैः ऐसे शान्त होती जा रही हैं जैसे प्रदीप्त अग्नि के ऊपर जल का प्रहार हो जाता है। आज में इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना नहीं दूंगा। मैं अपने पूज्यपाद गुरु देव को इस संसार की

परिस्थिति को वर्णन करना चाहता हूं कि यह संसार कैसा है। इस संसार में हो क्या रहा है। मेरे मस्तिष्क में तीन प्रकार के विवाद रहते हैं। सबसे प्रथम विवाद है कि राष्ट्र कैसा हो, उसके पश्चात् ब्राह्मण समाज कैसा हो और तृतीय वाक्य मेरा यह है कि यह भूमि जिसमें हमारी आकाश वाणी जा रही है इस भूमि पर त्रेता काल में किस का प्रभाव था, कौन यहां का राजा विराजमान रहता था। इसके सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय देना है, उनका विस्तार नहीं देना है जिससे यह ज्ञान मेरे पूज्यपाद गुरु देव को भी श्रवण हो जाये कि वास्तव में प्रायः ऐसा होता रहता है।

जब मैं विचारता रहता हूं कि यह हमारी आकाशवाणी मृत मण्डल में जा रही है और मृत मण्डल का प्राणी और विद्वत मण्डल भी इन वाक्यों को श्रवण करने के लिये तत्पर रहता है तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। मानव के मस्तिष्क में प्रायः एक वाक्य और रहता है कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का जो स्थूल शरीर है जिसके माध्यम से हमारी वाणी जाती है यह वाणी क्या है इसके ऊपर हमारे शास्त्रोक्त वाक्य और अनुभवी वाक्यों को श्रवण कर लेना चाहिए। तो कोई तो मानव पठन-पाठन करने के पश्चात्य अपनी पण्डित्य दृष्टि से इसको दृष्टि-पात करना चाहता है, कोई यौगिक दृष्टि से इसको दृष्टिपात करना चाहता है, कोई यह उच्चारण करना चाहता है कि शब्दों में कितनी अशुद्धियां हैं, नाना प्रकार की दृष्टि से दृष्टि-पात किया जाता है और किया जाना चाहिये। इसमें हमारा किसी प्रकार का विवाद नहीं है क्योंकि जब मानव आपत्ति के लिए चलता है तो नाना प्रकार की आपत्तियां उसके समक्ष आती रहती हैं। उनको सहन करना, उनको विचार विनिमय

करना और उनको अपने जीवनचर्या में लाना यह मानव का स्वभाविक गुण होना चाहिए। मानव को किसी भी काल में हताश नहीं होना चाहिए।

मैंने अभी अभी जब यज्ञ की परम्परा चल रही थी, अपने पूज्य गुरुदेव को प्रेरणा दी की भगवन्! आप यज्ञ के सम्बन्ध में अपना कुछ प्रकाश दीजिये परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कुछ प्रकाश दिया और उसके पश्चात् मुझे कुछ समय प्रदान किया। मैंने कुछ यौगिक परिक्रियाओं का वर्णन कराया था कि मानव को विचारना चाहिए कि दर्शनों का सिद्धान्त क्या है, विचार धाराएं क्या हैं। मानव ने अपने सिद्धान्त को ही सिद्धान्त बना लिए हैं परन्तु दर्शनों का सिद्धान्त उनके सिद्धान्तों के आगे दूरी चला जाता है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव के सम्बन्ध में एक वाक्य कहा था कि प्राणों का संघात होता रहता है। आज मानव यह नहीं जानता की प्राणों की परिभाषा क्या है, प्राण शरीर में क्या क्या कार्य करते हैं, यौगिक क्रिया में क्या क्या कार्य करते हैं। प्राणों को लेकर जब मानव अनुसन्धान करना प्रारम्भ करता है तो अनुसन्धान सहज हो जाता है।

यह जो बाहरीय जगत् हमें प्रतीत हो रहा है इसकी कल्पना मानव शरीर से की जाती है। मानव की जो आन्तरिक प्रवृत्तियां हैं इनमें अन्तरिक्ष भी है, मानो उसमें सर्वस है। हमारा तटस्थ सिद्धान्त यह कहता है कि अन्तरिक्ष में आत्माएं विराजमान रहती हैं, परमाणु भ्रमण करते रहते हैं। हमारे यहां धर्मज्ञ शास्त्रों ने और महर्षि कपिल जी ने जो आत्मा का परिमाण माना है वह इस प्रकार माना है कि मानव के सिर का जो एक बाल होता है उसका एक गोल विभाग बना लिया जाये और सातवां जो भाग है उसके ९९ भाग किए जाएं तो उतनी सूक्ष्म

आत्मा अन्तरिक्ष में भ्रमण करती है। आज जब मानव के द्वारा मानव का सिद्धान्त यह कहता है कि जैसा यह पिंड है इसी प्रकार का यह ब्रह्माण्ड है। मानव को यह विचार विनिमय होगा कि यह बाहरीय जगत् में अन्तरिक्ष है इसमें सब परमाणु ओत प्रोत हो जाते हैं मानो वह जो परमाणुवाद का क्षेत्र है वह अन्तरिक्ष है तो क्या जो हमारा आन्तरिक अन्तरिक्ष है उसमें परमाणुवाद भ्रमण नहीं करता होगा? अवश्य करता होगा। यदि नहीं करता होगा तो आन्तरिक्ष जगत् में आकाश का स्वीकार करना व्यर्थ हो जाता है। इन वाक्यों को लेकर जब प्रायः हम अनुसन्धान की दृष्टि से इसको दृष्टिपात करते हैं तो हमें यह प्रतीत होता है कि प्राणों का जो संघात है, उस की परिक्रिया के साथ साथ यह परिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। हमें प्राणों का संघात स्वीकार करना होगा। प्राणों की परिक्रियाओं में, प्राणों की एकता में सहकारिता का होना बहुत अनिवार्य हो जाता है। यह साधारण योगियों का विषय नहीं है, यह पुस्तकों को लेखनी बद्ध करने के पश्चात्, योगी कहलाने के पश्चात् मानव का यह विषय नहीं रहता परन्तु यह उन महापुरुषों का विषय होता है जो जनता में जनादन समाधिष्ठ लगाने वाले होते हैं, जो ब्रह्म समाधिष्ठ हो जाते हैं उनका यह अनुपम विषय रह जाता है। यह लेखनी का विषय तो है ही परन्तु लेखनी के साथ अनुभव का विषय विशेषकर रहता है।

इस सम्बन्ध में एक वाक्य और भी उच्चारण करना था, पूज्य गुरुदेव तो यह वाक्य सर्वथा जानते ही हैं मैं तो सूर्य के समक्ष एक सूक्ष्म से प्रकाश के तुल्य आ पहुंचा हूं उनके चरणों की वन्दना करने के लिए। मैंने अपने जीवन में क्या क्या किया है यह नहीं उच्चारण करना चाहता क्योंकि गुरुदेव

सब कुछ जानते हैं। आज मानव दुराचारी भी बन सकता है परन्तु उसके पश्चात् भी मानव जीवन मुक्त की प्रवृत्तियों में जा सकता है। यह मैंने अपने जीवन में स्वयं अनुभव किया है। इस वाक्य को हम यहीं समाप्त कर दें तो सुन्दर नहीं होगा। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हमारे पूज्यपाद गुरुदेव का यह वह आपत्ति काल है और प्रायः भोगा जा रहा है। मुझे इसमें बड़ी प्रसन्नता रहती है कि करोड़ों करोड़ों वर्षों के संस्कार भी मानव भोगा करता है। आज मेरे पूज्यपाद गुरु-देव उस कर्म को भोग रहे हैं जो आज से लगभग चालीस लाख वर्ष पूर्व किया था। मानव को इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए, यह प्रायः ऐसा ही चलता रहता है। ससार की परिक्रियायें चलती रहती हैं और संसार में ऐसा प्रायः प्रत्येक मानव के साथ होता रहता है। मैं आज अपने पूज्यपाद गुरुदेव को वह समय स्मरण नहीं कराना चाहता हूं जब यह राजा दशरथ के यहां यज्ञशाला में लाये जाते थे। केवल नग्न रहते थे। २८४ वर्ष तक कोई वस्त्र धारण नहीं किया। उन वार्त्ताओं को स्मरण कराने नहीं जा रहा हूं।

रहा यह वाक्य कि गुरूदेव को यह आकाशवाणी कैसे जाती है? हम माध्यम बना कर कैसे वाक्य प्रारम्भ करते हैं? परन्तु जब हृदय में आकाश होता है तो उस आकाश में आत्मायें भ्रमण करती रहती हैं और जब बाहरीय जगत और आन्तरिक जगत् दोनों की समता हो जाती है, दोनों का मिलान हो जाता है उस समय ऐसी ऐसी वार्त्ता कोई आश्चर्य-जनक नहीं रह जातीं। यह तो महापुरुषों का केवल एक खिल-वाड़ होता है, एक अग्रणिय होता है जैसे सूक्ष्म सा बालक माता की लोरियों में खिलवाड़ करता है, आनन्द करता रहता,

है इसी प्रकार यह तो सब आनन्द हैं। यह कोई आश्चर्य नहीं है। जिस मार्ग में जो मानव चलने लगता है उसे उस मार्ग का सब कुछ प्रतीत होने लगता है। तो इस सम्बन्ध में कोई अधिक चर्चा प्रकट नहीं करना चाहता।

आज मैं राष्ट्रवाद पर आना चाहता हूं कि राष्ट्रवाद क्या है जो भगवान् मनु जी ने निर्णीत किया है और जो वर्तमान में दृष्टिपात कर रहे हैं यह क्या है! आज का राष्ट्रवाद नहीं कहलाया जाता क्योंकि आजका राष्ट्रवाद राष्ट्रवाद नहीं स्वार्थवाद है। इसमें मानव को आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि स्वार्थवाद क्यों उच्चारण कर दिया क्यों कि जब मानव राष्ट्र के पदों का अधिकारी बन जाता है तो जब तक उसका उदर, उसका गृह सुन्दर नहीं बन जाता तब तक वह दूसरों के आंगन को दृष्टिपात करता ही नहीं। जब यह परिक्रियायें राष्ट्र में आ जाती हैं, समाज में आ जाती हैं उस समय राष्ट्र में प्रायः क्रान्ति के आने के सिवाय रहता ही कुछ नहीं। आज कहीं भाषा का विवाद है, कहीं वाणी का विवाद है कहीं द्रव्य का विवाद है। मानव के मस्तिष्क में आता रहता है। परन्तु वास्तव में आज समाज में न तो कोई भाषा का विवाद है और न राष्ट्र का विवाद है, विवाद है तो अपने उदर की पूर्ति करने का। प्रायः जो मानव द्रव्यपति हैं उन्हें कोई न कोई ऐसा आश्रय चाहिये जिससे विवाद होता रहे और उनके उदर की पूर्ति होती रहे। यह है सबसे विशेष कारण।

मैं महान् इस भूमि की चर्चा करना चाहता हूं जहां यवनों का राष्ट्र भी रहा है, यहां वाल्मीकि जी ने भी अपनी लेखनी को बद्ध किया है, नल और नील दो वैज्ञानिक इसी भूमि के रहने

वाले थे जो लंका को विजय करने के लिए भगवान् राम की सहायता में पहुंचे । मैं आज इसको उच्चारण करने नहीं आया। आज मुझे यह उच्चारण करना है कि आज हम कहां जा रहे हैं और कहां थे। महर्षि बाल्मीकि जी ने अपनी लेखनी बद्ध करते हुए नल नील की प्रशंसा करते हुये कहा है, किष्कन्धा की प्रशंसा करते हुए कहा है। भगवान राम को जब वन प्राप्त हुआ तो माता केकयी का दोष नहीं था। यह राजा दशरथ की आज्ञा नहीं थी, यह ऋषि मुनियों की आज्ञा थी। वशिष्ठ मुनि ने बाल्य काल में भगवान राम से कहा था कि हे राम! यह जो रावण आततायी आ रहा है जिसने अराजकता उत्पन्न कर दी है उसको तुझे विजय करना है और अपनी संस्कृति का प्रचार करना है। भगवान् राम ने भील और द्रावड़ जो भयंकर वनों में रहने वाले थे उन्हें अपनाया और अपनाने के पश्चात् एक सुन्दर मार्ग ले कर के चले क्योंकि माता केकयी ने यह कहा था कि राष्ट्र की उन्नति होनी चाहिये। माता केकयी का कोई दोष नहीं था, वशिष्ठ, विश्वामित्र, देवऋषि नारद ने सोम और लोम इत्यादि ऋषियों ने उसे निर्णय कराया था। देखो यह एक प्रकार की ऋषि मुनियों की ब्राह्मणों की विचार धारा थी।

आज हमारे राष्ट्र का जब तक ब्राह्मण समाज उन्नतिशील नहीं होगा, आत्म विश्वासी नहीं होगा तब तक राष्ट्र की उन्नति होना असम्भव प्रतीत होती है। ब्राह्मण कहते किसे हैं ? ब्राह्मण कहते हैं त्याग और तपस्या को क्योंकि जिसके द्वारा त्याग और तपस्या की प्रतिभा रमण करती है उस ब्राह्मण को भोजन की इच्छा नहीं होती, उसे यह प्रतीत होता है कि मेरा जो जीवन है वह राष्ट्र के लिये समाज के लिये, त्याग और तपस्या

के लिये है इसके लिये ससार में आया है जब इस प्रकार की प्रवृति होत्ती है तो राष्ट्र की उन्नति हुआ करती है। आज का मानववाद, राष्ट्रवाद केवल स्वार्थ के वशीभूत हो रहा है, स्वार्थ में संलग्न है। उन्हें यह ज्ञान नहीं कि हमारे ऊपर क्या क्या प्रहार हुये, क्या २ नहीं हुये। हमारे यहाँ ऐसी २ पुस्तकें थीं जिन्हें हम स्वप्न में भी दृष्टिपात नहीं कर पाते। हमारे यहाँ नाना स्मृतियां थी, शतपथ ब्राह्मण इत्यादि नाना लिपियां थीं और भी देखो महाराज़ा घटोत्कच का पुस्तकालय, महाराज अभिमन्यु का अर्जुन का और भीम इत्यादियों के पुस्तकालय थे जो इतने वैज्ञानिकता से परिपूर्ण थे कि मानव उन्हें अनुभव में ला ही नहीं सकता। आज मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है जब मैं यह दृष्टिपात करता रहता हूं कि राष्ट्र में भाषा का विवाद है, वाणी का विवाद है, संस्कृति का विवाद है। अरे! जिस राजा के राष्ट्र में संस्कृति का विवाद होता है क्या वह भो कोई राष्ट्र होता है उसको राष्ट्र नहीं कहते।

राष्ट्र में मुझे ब्राह्मणों की सूक्ष्मता प्रतीत होती है क्योंकि यह राष्ट्र का विषय तो होता हो है परन्तु ब्राह्मण को अपनी पुकार राष्ट्र तक पहुंचानी चाहिये कि हे राजन्! तेरे राष्ट्र में एक संस्कृति होनी चाहीये। मुझे स्मरण है जब यहां वाली असंस्कृति में पहुंच गया था-संस्कृति का अभिप्राय यह नहीं है कि हम वाणी को संस्कृति कहते परन्तु चरित्र को कहते हैं। चरित्र होना चाहिये। राजा के राष्ट्र में वाणी के साथ में चरित्र होना चाहिये और चरित्र इतना बलिष्ठ हो कि राजा उसको स्वतः अपनाये और उससे राष्ट्र उन्नत हो, प्रजा उसके अनुकूल अपना कर्त्तव्य प्रारम्भ करती चली जाये। भगवान् राम जब अपनी संस्कृति के चक्र को ले करके चले और निखाद

इत्यादि तथा बाली के द्वारा पहुंचे तो बाली को नष्ट किया और उससे यही कहा था कि हे बाली ! तुमने अराजकता को उत्पन्न किया है, तुमने छोटे भ्राता की पत्नी को अपनाया है इसीलिऐ मैंने तुम्हारे ऊपर प्रहार किया है। आज वही भूमि मुझे पुकार पुकार करके कह रही है कि यहां का ब्राह्मण समाज पवित्र होना चाहिए। नाना प्रकार का जो प्राणी का विवाद है वह मेरी दृष्टि में कोई विवाद नहीं है। मैंने प्रथम शब्दों में कहा है कि वह तो अपने उदर की पूर्ति करने का है, वह कोई विवाद नहीं है। वाणी का विवाद होता तो स्वीकार कर लेते, वह तो कुछ इस प्रकार के प्राणी होते हैं जो दुर्योधन प्रकृति के प्राणी होते हैं कि राष्ट्र उन्नत नहीं होना चाहिए। राष्ट्र में सम्पत्ति को नष्ट करा देना चाहिए क्योंकि साधारण प्रजा अशान्ति में होगी तो हमारे उदर की पूर्ति का साधन बना रहेगा। यह कारण होता है द्रव्यपतियों का प्रायः; यह बहुत समय से चला आ रहा है। इसको नष्ट करने के लिए त्यागी पुरुषों की आवश्यकता होती है।

तो आज मैं यह वाक्य उच्चारण करने आ पहुंचा हूं कि मानव का जीवन क्या है? राष्ट्र कैसा हो? राष्ट्र में ब्राह्मण समाज होना चाहिए। राष्ट्र उन्नत होना चाहिए। यह अराजकता आज से नहीं बहुत समय हो गया है। यहां महाराजा युधिष्ठिर के राष्ट्र के पश्चात् अभिमन्यु के पुत्र का राष्ट्र हुआ जिसको हमारे यहां परीक्षित कहा जाता है। उसके पश्चात् परीक्षित की प्रणाली में मामनुक नाम के राजा हुए मानो आभान्तरी राजा हुये, आभान्तरी राजा के पश्चात् यहां विक्रम नाम के राजा हुए। उनके पश्चात् शांगीण नाम का राजा हुआ। शामिणम नाम के राजा के पश्चात् यहां सतकामातुर नाम का

राजा हुआ उसके पश्चात् यह प्रणाली समाप्त हो गई थी। इस प्रणाली के समाप्त हो जाने के पश्चात् यहां जैनियों का साम्राज्य आ गया। जैनमत की उत्पत्ति हो गई। यहां एक महावीर नाम के स्वामी आ गये। उन्होंने अपना प्रसार किया परन्तु वह प्रसार इस प्रकार का था जो भ्रमात्मक था। उस महावीर से इस भारत भूमि में घृणा की उत्पत्ति हुई। उससे पूर्व घृणा की उत्पत्ति नहीं थी। वास्तव में घृणा की उत्पत्ति तो महाराजा दुर्योधन से हो गई थी परन्तु मानव के द्वारा इतना पक्षपात महात्मा महावीर के समय में आया। वास्तव में वह महात्मा थे, मैं उनका आदर करता हूं, परन्तु उनके शब्दों में घृणा थी, घृणा होने के नाते उनके मानने वालों ने अधिक घृणा उत्पन्न कर दी और उसका परिणाम यह हुआ कि अराजकता का प्रसार प्रारम्भ होने लगा।

आगे चलकर के वही समय आता रहा। उनके सिद्धांत के विपरीत जो यहां पुस्तकें थी, वैज्ञानिक थे, जो उनके आंगन में नहीं आते थे अग्नि के मुख में अर्पित होने लगे। आगे चल करके वही महात्मा बुद्ध के रूप में महापुरुषों की उत्पत्ति होती रही। मैं उन सभी पुरुषों का आदर करता हूं परन्तु मैं आदर इसलिये नहीं करता क्योंकि उन्होंने वैदिक साहित्य को, वेद की पोथी को अपने नेत्रों के समक्ष नहीं आने दिया। परन्तु आदर इसलिए करता हूं क्योंकि वह महान् थे, विचित्र थे। उनके शब्दों में पश्चात् में आकर के घृणा की दृष्टि आ गई थी और जब राष्ट्र में घृणा आ जाती है तो शान्ति नष्ट हो जाती है।

आगे जैनियों का साम्राज्य चलता रहा। यहां पुस्तकम् के पुस्तकम् अग्नि के मुखारविन्द में जाते रहे। ११२७ वेदों की शाखायें थी परन्तु वह भी अग्नि के मुख में चली गईं। किसी

महापुरुष ने कोई संहिता स्मरण की उसकी परम्परा चलती रही। वेद की रक्षा होती रही। वेद को परमात्मा का ज्ञान कहा है इसीलिये प्रायः उसकी रक्षा होती रही।

आगे चल करके महात्मा शंकराचार्य ने अपनी प्रतिभा से, अपनी योगिका से एक संस्कृति का प्रसारण करने का प्रयत्न किया। परन्तु यहां के ही धर्मज्ञों ने जिन्होंने यह जाना कि तुम्हारी पद्धति नष्ट होने जा रही है उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर दिया मैं इस सम्बन्ध में अधिक नहीं जा रहा हूं।

आगे चलकर के इस भारत भूमि पर महापुरुष होते रहे। महात्मा ईसा हुये। महात्मा ईसा ने भी अपनी संस्कृति का प्रसार किया। अपने चरित्र बल का प्रसार किया। महात्मा ईसा ने इस भारत भूमि में शिक्षा पाने के पश्चात् अपने धर्म का प्रसारण किया परन्तु धर्म क्या है यह उन्होंने नहीं विचारा। हम यह उच्चारण कर सकते हैं कि उनका पांडित्य बहुत ऊंचा और पवित्र था आयुर्वेदाचार्य के नाते। उनका हृदय बड़ा निर्मल और स्वच्छ था।

उसके पश्चात् जिन्हें महात्मा मुहम्मद कहा जाता है हुए। जिनका जीवन राष्ट्रीय रहा। राष्ट्र में यूहूदियों को नष्ट करने के लिये जहां चार मुख्य कार्य होते थे वहां मुहम्मद का जन्म हुआ वहां एक तो मानव अपनी प्रीति से दूर रहता था और नाना घृणित कार्य करता था। जहां अपने आधीन बनाने की प्रकृतियां आ जाती हैं वहां कोई न कोई सुन्दर पुरुष आ ही जाता है। महात्मा मुहम्मद आये। मुहम्मद राष्ट्र को अपनाने के पश्चात् पाखण्डता में परिणत हो गये। उन्होंने पाखण्ड का प्रसार करना आरम्भ किया। उन्होंने एक पुस्तक बनाया और किसी आंगन में स्थिर कर दिया और राष्ट्र के पुरुषों को

किसी भी प्रकार से अपने वशीभूत करके उस पुस्तक का अपना प्रभुत्व उनके ऊपर आ पहुंचा क्योंकि राष्ट्र में आने के पश्चात् मानव का साधारण प्रजा पर प्रभुत्व स्वतः आ ही जाता है। परन्तु मैं महात्मा मुहम्मद को महात्मा की दृष्टि से दृष्टिपात नहीं करता हूं। मैं यह कहा करता हूं कि मुहम्मद ऐसा पुरुष था जो राष्ट्र के लिये कुछ सुधारक था परन्तु जहां चरित्र और मानवता का प्रश्न है, महात्मा का प्रश्न है वह मेरी दृष्टि में सुन्दर प्रतीत नहीं होता क्योंकि मैं प्रायः परम्परा से यथार्थ वक्ता रहा हूं। अपने जीवन के सम्बन्ध में भी शब्द उच्चारण करने के लिये तत्पर रहता हूं। मुहम्मद ने तेरह संस्कार किये, तेरह पत्नियां रहीं। एक नष्ट होती रही दूसरी आती रही। उन्होंने अपने जीवन में ही देखो कुरिस परिवार था उस परिवार से उन्होंने उसी दूर के पुत्र की स्त्री को अपने आंगन में अपने गृह को चलाने के लिये अपनाया। पत्नी के पश्चात् उससे संस्कार कर लिया। मैं इस दृष्टि से सुन्दर स्वीकार नहीं करता हूं।

आगे मैं चलता चला जाऊं। आगे इन्हीं के मानने वालों ने क्या २ कुरीतियों का आक्रमण किया है, संस्कृति का विनाश हो गया परन्तु जिसको हमारे आधुनिक काल में ईरान कहते हैं वहां महर्षि गौतम जी का आश्रम रहा है। उन्होंने वहां बड़ा प्रसार किया। महर्षि जैमिनि मुनि महाराज ने भी उन्हीं आंगनों पर भ्रमण किया है। इसमें और आगे प्रसारण करने का मुझे समय प्राप्त नहीं हो रहा है। ईरान से पूर्व उस राष्ट्र का नाम श्वांगनी था, आर्यत्व कहलाया जाता था। इसी प्रकार जिसको आधुनिक काल में अरब रूपों से वर्णन किया जाता है यह मुहम्मद के रूपान्तर हैं, उससे पूर्व अरब का नाम शौनधेत् नाम

का राज्य कहलाता था जहां महर्षि जैमनी जी का प्रायः भ्रमण होता रहता था। इन वाक्यों को मैं और अधिक नहीं ले जाना चाहता हूं। क्योंकि यह तो वन है मैं कहां तक उच्चारण करूंगा। उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि मुहम्मद के मानने वालों ने इस भारत भूमि पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया परन्तु हमारे यहां राजा भोज के काल में महाराजा कालीदास हुये जिन्होंने मुहम्मद को नष्ट किया था, मृत्यु को प्राप्त करा दिया था क्योंकि मुहम्मद यह चाहता था कि इस भारत भूमि पर उसका साम्राज्य हो जाये, प्रभुत्व हो जाये तो सारे संसार को अपनी छत्र-छाया में लाया जा सकता है। राजा भोज के महा मन्त्री काली से उन्हें नष्ट कर दिया था। इस परम्परा में मैं अधिक नहीं जाना चाहता हूं कि कैसे नष्ट किया, क्यों नष्ट किया।

आगे समय आया मुहम्मद के मानने वालों ने इस भारत भूमि पर आक्रमण कर दिया, विजयी हो गये, साम्राज्य हो गया। उस साम्राज्य में क्या हुआ इस घृणित चर्चा को मैं लाना नहीं चाहता। सूक्ष्म सूक्ष्म चर्चा यह देना चाहता हूं कि उनका चरित्र उनकी मानवता उनका इतिहास प्रकट करता है। उनकी अराजकता उनके द्वारा प्रकट करती है यदि मुहम्मद के मानने वालों में अराजकता न होती तो यहां से जाने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता था।

यवनों ने क्या किया? उनका मुख्य कार्य माता के सिंगार का हनन करना था और अपना प्रभुत्व करना यह उनका कार्य था। उनके राष्ट्र की परम्परा चली। उनके राज्य में जहां तक अच्छाइयों का प्रश्न है वह कहां है? जहां उनके पांडित्य पर विचार किया जाता है तो यहां कोई ऐसा राजा नहीं हुआ जिसमें

पांडित्य हो और पांडित्य की दृष्टि से राष्ट्र को उन्नत बनाने का प्रयत्न किया हो। रहा क्या ? क्यों इतने काल तक राज्य किया गया ? इसी कारण से जो आधुनिक काल में प्रायः चल रहा है कहीं भाषा का विवाद है, कहीं मानवता का विवाद है। अरे ? जब यहां स्वार्थवाद आ जाता है तो प्रायः मानव पराधीन हो ही जाता है। मैं इस वाक्य को इस दृष्टि से प्रकट नहीं करना चाहता हूं। वाक्य यह उच्चारण करना चाह रहा हूं कि जब यहां स्वार्थ आया उसी काल में मानव मानव का पिपासी हो करके अपनी संस्कृति को दूरी कर देता है। यदि मानव के द्वारा अपनी संस्कृति हो तो यहां कोई कारण नहीं बन सकता के हमारे पांडित्य को किसी प्रकार की हानि पहुंचाने के लिए कोई आ पहुंचे।

आगे चल करके जब पश्चिम से प्राणी यहां आकर राज्य करने लगे इसी मध्य में एक आचार्य दयानन्द नाम के महात्मा आ गये। महात्मा दयानन्द ने क्या किया उसको मानव को अपने हृदय से दूर नहीं कर देना चाहिए क्योंकि महात्मा दयानन्द ने एक ही वाक्य कहा है कि जो तुम्हारी संस्कृति है, परम्परा है, आदि ब्रह्मा से लेकर के जैमिनि पर्यन्त जो तुम्हारा सिद्धान्त कहता है उसी पर आ जाओ। यदि आ जाओगे तो शान्ति उत्पन्न होगी, महान् साम्राज्यवादी बनोगे अन्यथा तुम्हारा जीवन यों ही नष्ट भ्रष्ट होता रहेगा। महात्मा दयानन्द ने अपने जीवन में कितना प्रयत्न किया परन्तु अपने धर्म के ठेकेदारों ने उनको विष दे देकर के नष्ट करने का प्रयत्न किया परन्तु वह तो विभूति थी, परम आत्मा थी, महान् आत्मा थी उसको संसार का लेपन नहीं आया, द्रव्य का लेपन नहीं आया।

जिस प्रकार भगवान् कृष्ण के जीवन में द्रव्य का लेपन नहीं आया इसी प्रकार महात्मा दयानन्द के जीवन में किसी प्रकार की कुरीतियों का लेपन नहीं आया। अच्छाइयों की परम्परा बनी रही क्योंकि ऋषित्व और पांडित्व उनके जीवन का स्वतः अधिकार रहा है। जिनका यह जन्मसिद्ध अधिकार होता है वही यहां संसार में कुछ उत्थान कर सकते हैं। मुझे स्मरण है कि महात्मा दयानन्द की आत्मा के जो उद्गम विचार थे वह पांडित्य से गुथे हुये कई जन्मों से चले आ रहे थे। यहां आकर के उन्होंने यवनों को दीर्घ वाणी से उच्चारण किया और जो यहां पश्चिम के राष्ट्र नेता थे उनको दीर्घ वाणी से कहा; अपने राष्ट्र में रहने वाले प्राणियों से कहा कि कहां जा रहे हो। आज तुम अपना समाज बनाओ, अपनी उन्नति करने का कोई साधन बनाओ। यह जो जातिवाद से ब्राह्मणवाद चल रहा है, जातिवाद को नष्ट कर दो। यह जो जातिवाद की परम्परा है यह महाभारत काल के पश्चात् की है इसे नष्ट करो। यौगिकता उनके द्वारा होने के नाते जैसे सूर्य प्रकाशवान रहता है ऐसे ही उनका जीवन मानव के हृदयों में प्रदीप्त रहता आया है और रहता रहेगा।

हम उनका जितना आदर करते चले आये हैं वह हमारा हृदय जानता है। रही यह बात कि यह संसार उनका आदर करता है अथवा नहीं करता यह मैं अभी-अभी प्रकट करूंगा परन्तु वाक्य में यह उच्चारण करने जा रहा था कि उनका महान् आत्मा कितना सुन्दर, कितना पवित्र, कितना मानवता से ऋषित्व से, पांडित्य से गुथा था। उन्होंने आदि ब्रह्मा से जैमिनि मुनि तक के सिद्धान्तों को प्रकट किया उनके हृदय में वह कुञ्जी भी, उनका वह हृदय पुकार कर के कहता था।

समाज ने उसको अपनाने का प्रयास किया। अपनाया, क्रांति भी आई, उनके कारनामों का महान् परिणाम हुआ।

आधुनिक काल में उनके मानने वाले क्या कहते हैं यह वाक्य मैं उच्चारण करने जा रहा हूं। उनके मानने वाले यह कह रहे हैं कि तर्क वाद पर आने के लिए तत्पर हो गये। जहां विचार विनिमय करना था वहां तर्कवाद आ गया। जहां जातिवाद को नष्ट करना था वहां जातिवाद में पारंगत हो गये हैं। जहां दयानन्द की पद्धति का प्रश्न है, दयानन्द की पद्धति नहीं, मनु जी की पद्धति कहती है कि जातिवाद नहीं होना चाहिए। जातिवाद क्या वस्तु है? मानववाद होना चाहिए। यह जातिवाद कैसे नष्ट हो? जब यहां ब्राह्मण हों। और ब्राह्मण कैसे हों? त्यागी और तपस्वी हों और वह ब्राह्मण प्रत्येक गृह में जा करके उत्तम समाज को एकत्रित करके यह कहें कि वर्तमान का समय यह कहता है उसके अनुसार तुम्हें परिवर्तित होना होगा और नहीं होगें तो भयंकर क्रान्ति मानव के निकट आती चली जा रही है।

दयानन्द के मानने वालों ने तर्कवाद को अपना करके सिद्धान्त को त्याग करके, यौगिक वाक्यों को त्याग दिया है। महात्मा दयानन्द की आत्मा भी अन्तरिक्ष में व्याकुल हो रही है कि यह मेरे मानने वाले मेरे पुजारी क्या कर रहे हैं। यह प्रायः हो रहा है। मैं आज उनका आदर करता हूं क्योंकि उन का कार्य कितना पवित्र, कितना महान्, कितना पांडित्य का है। महात्मा शंकराचार्य की पुनीत आत्मा भी इसी प्रकार व्याकुल होती है परन्तु आज मैं कुरीतियों में नहीं जाना चाहता। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि आज के मानववाद को उन्नतशील बनना है; विचार शील बनना है, राष्ट्र वाद

को उन्नत बनाना है तो परम्परा को अपनाना होगा अन्यथा यहां तो क्रान्ति होने वाली है ही। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जब मैं राष्ट्र के पूर्व दशा में, उत्तरायण में, पश्चिम में, दक्षिण विभाग में अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा इस राष्ट्र की पद्धतियों को विचार विनिमय करने लगता हूं तो मेरे हृदय में एक वेदना उत्पन्न होने लगती है और मेरी वह वेदना पुकार करके यह कहती है कि समाज कहां जा रहा है। यह राम का राष्ट्र जहां हनुमान, नल नील जैसे वैज्ञानिक हुये कहां जा रहा है। यह भगवान् कृष्ण का राष्ट्र कहलाया जा रहा है। भगवान् कृष्ण ने अपने जीवन में कोई पाप नहीं किया। पाण्डित्य की दृष्टि से रहे, वैज्ञानिक दृष्टि से रहे, उनका जीवन कितना महान् रहा है। आज उनके मानने वाले कहां जा रहे हैं। मुझे यहां बड़ा आश्चर्य आता है जब मैं इन वाक्यों को चिन्तन करता हूं। गुरुदेव को जब मैं इन वाक्यों का वर्णन करता हूं तो वह बड़ा आश्चर्य करते हैं इन वाक्यों पर। मुझे एक वेदना रहती है। जब राष्ट्र के पूर्व विभाग में जाता हूं तो वहां मुझे अग्नि प्रदीप्त होती प्रतीत हो रही है। जब मैं दक्षिण के विभाग में आता हूं तो वहां भी मुझे ऐसा प्रतीत होता है यौगिक परिक्रियाओं से जैसा समुद्रों से अग्नि प्रारम्भ होने जा रही है। यह अग्नि क्या करेगी ? यह अग्नि मानवत्व को नष्ट करती चली जायेगी।

यह राष्ट्र कैसे उन्नत हो यह प्रश्न है हमारे समक्ष ? उन्नत होना चाहिये परन्तु ब्राह्मणों के द्वारा होना चाहिये ? आधुनिक का जो ब्राह्मण समाज है वह किस प्रकार का है। मैं आज निन्दा करने नहीं जा रहा हूं। केवल वास्तविक जो दशा है उसको प्रकट करने जा रहा हूं आज ब्राह्मण समाज कहीं पदों की लोलुपता से अपने को नष्ट करता चला जा रहा है, कहीं अभिमान

की मात्रा है। अरे! परमात्मा के राष्ट्र में, परमात्मा की विद्या का चिन्तन करने वाले को ब्राह्मण कहते हैं और जो ब्रह्म का चिन्तन करता है, ब्रह्म विद्या का चिन्तन करता है यदि उसे अभिमान आ गया तो उसके द्वारा तपस्या का लेश चिन्तन भी उसके मन में नहीं होता क्योंकि पांडित्य वही होता है जिसमें अभिमान नहीं होता। परमात्मा कहां रहता है ? परमात्मा को न मान है और अपमान है। इसी प्रकार ब्राह्मण ब्राह्मण उसी काल में कहलायेगा जब उसे न मान रहेगा न अपमान। इसी प्रकार आज हमें विचार विनिमय करना है कि यहां ब्राह्मणों का एक समाज होना चाहिये। त्यागी और तपस्वियों का समाज जब राजा तक पहुंचेगा और राजा से कहेगा कि हे राजन्! हमने यह अपना विधान बनाया है, हमारे दर्शनों का सिद्धांत राष्ट्र की पद्धति यह कहती है तुम उसको क्यों नहीं स्वीकार करते हो। जब ब्राह्मण अपने हृदय के उद्‌गार को इतना विचित्र बना लेता है तो राजा उन वाक्यों को स्वीकार कर ही लेता है।

महापुरुष वही होता है जिसका या तो वाक्य स्वीकार किया जाये अन्यथा वह अपनी मृत्यु के आंगन को चला जाये। ब्राह्मण वही होता है या तो ब्रह्म के वाक्य को स्वीकार कराओ अन्यथा अपने शरीर को भी नष्ट कर देना चाहिये। यहां तक हमारे यहां दर्शनों में आता है, प्रायः स्मृतियों में आता है, इसको विचारना है। मुझे स्मरण है जब महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज गायत्राणी और मैत्रेयी दोनों का त्याग करके तपस्या करने के लिये चले गये। उन्होंने देखो बारह वर्ष का एक अखण्ड संकलन धारण किया था कि मैं उस अन्न को पान करूंगा जो अन्न भूमि पर कृषक द्वारा अन्न ले जाने के पश्चात् रह जाता है उसे चुन कर मैं पान करूंगा। यह संकलन उन्होंने धारण

किया। उसके पश्चात् सम्राट् जनक जी उनके द्वारा आये और भी राजा महाराजा आये, चरणों में ओत प्रोत हो गये। त्यागी और तपस्वी को यह नहीं विचारना कि हमें उदर की पूर्ति करने का साधन बनाना है। उसको यह बनाना है कि हमारी वाणी का प्रसार किस प्रकार होगा और हमारी वाणी में कितना तेज होना चाहिये। हमें वस्त्रों की चिन्ता नहीं होनी चाहिये और नाना प्रकार के आभूषणों की चिन्ता नहीं, हमें तो हमारे वाक्य की चिन्ता है कि हमारे वाक्य में इतना पांडित्य है इतना त्याग और तप होना चाहिये कि या तो वाक्य को स्वीकार किया जाये अन्यथा राष्ट्र हमें मृत्यु को पहुंचा दे तो बहुत ही सुन्दर है।

मुझे तो माता गार्गी का जीवन भी स्मरण है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो ब्रह्मवेता आदियों को जानते हैं उनका जीवन कितना सौन्दर्य में परिणत रहता था। एक समय माता गार्गी भयंकर वनों से सभा में आई तो नग्न आई तो उस समय जनक जी ने कहा कि तुम मेरी सभा में नग्न आ रही हो तुम्हें लज्जा नहीं आती। तो उस समय उन्होंने कहा था कि हे राजा! क्या तू राजा है? तुम्हें आत्मा का ज्ञान नहीं है? संसार में नग्न कौन होता है? नग्न वह होता है जो ज्ञान से शून्य होता है, नग्न वह होता है जिसके द्वारा शब्दों का ज्ञान और अभिमान होता है वह संसार में नग्न होता है। वह नग्न नहीं होता जिसके द्वारा त्याग तपस्या होती है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! मेरे प्यारे पूज्यपाद गुरुदेव! आज मैं यह क्या वाक्य प्रकट करने लगा हूं। मानव वही होता है जो त्याग और तपस्या में परिणत्त रहता है। आज के राष्ट्रवाद में, आज के समाज में मैं पंडितों की सूक्ष्मता दृष्टिपात करता हूं। यहां पांडित्य की सूक्ष्मता होती चली जा रही है, होती क्या

चली जा रही है, हो गई है। उसको पुनः से उन्नत बनाया जाये। आज त्यागी और तपस्वी बन करके चलें और ब्राह्मणों को उन्नत बनायें स्वयं शिक्षा देने में तत्पर हों। जब यहां का आधुनिक ब्राह्मण समाज अपने उदर पूर्ति में परिणत हो जाता है, वाणी के सिंगार को त्याग देता है, अभिमान की मात्रा आ जाती है तो जानो कि ब्रह्म की दृष्टि में वह कोई पंडित नहीं कहलाता न विवेकी पुरुषों की दृष्टि में विवेकी कहलाता है, वह तो केवल अपने उदर का ही ब्राह्मण बना हुआ है। मैं इस सम्बन्ध में कोई अधिक चर्चा प्रकट नहीं करुंगा। मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो यह कहेंगे कि इन्होंने यह क्या वाक्य उच्चारण कर दिया। यह मूर्ख क्या उच्चारण कर रहा है। परन्तु जब मुझे समय प्रदान किया जाता तो मैं पूज्य गुरुदेव से कहा करता रहूं कि मुझे समय देना चाहिये और मैं उच्चारण ही करता हूं मेरे पूज्यपाद गुरुदेव प्रायः ऐसा समय प्रदान कर ही दिया करते हैं।

आज मैं क्या उच्चारण करने जा रहा हूं। हमारा जो वाक्य है वह क्या है? कि राष्ट्र का जो गुरु होता है वह ब्राह्मण है और ब्राह्मण के वाक्य को मानना राजा के लिये अनिवार्य होता है और मानता रहा है हमारी परम्परा की पद्धति कहती चली जा रही है त्रेता के काल में अराजकता आने लगी, राजा रावण का साम्राज्य छाने लगा तो उस समय सब ब्राह्मणों ने समाज एकत्रित किया। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, विश्वामित्र, देव ऋषि नारद, आनवाद ऋषि आभूषण, लोमपाद, गौतम आदि ऋषियों का समाज एकत्रित हुआ। वशिष्ठ मुनि जी के आश्रम में यह सभा हुई और सभा में यह निर्णय हुआ कि क्योंकि रावण आततायी आ रहा है और केवल यह

सूक्ष्म सा राष्ट्र अयोध्या का रह गया है और रघुकुल में उत्पन्न होने वाले दशरथ ऐश्वर्य में चले गये हैं, तीन पत्नियां हैं तो अब क्या करना चाहिए। उन्होंने कहा कि अब ब्राह्मण समाज को अपने जीवनों को नष्ट करना होगा। वही हुआ कि सब समाज ने वह पुकार राजा दशरथ को कही। राजा दशरथ के दोनों पुत्रों को अपने आंगन में लाये। विश्वामित्र ने उन्हें अस्त्रों-शस्त्रों की शिक्षा दी, धनुर्वेद की शिक्षा दी और पांडित्य उन्हें दिया नाना प्रकार की विद्याओं का प्रसारण कराया और जब वह पारंगत हो गये तो विश्वामित्र जी ने यह कहा कि हे बेटा! अब तुम जाओ और अपनी अस्त्र-शस्त्र विद्या का प्रसार करो। शिक्षा देने का परिणाम यह हुआ कि रावण जैसे के साम्राज्य को जिसका राष्ट्र सर्वशः पृथ्वी मण्डल पर छाने वाला था। कहां नहीं था रावण का राज्य? आधुनिक काल के राष्ट्रों का वर्णन कराता चला जाऊं। रावण के पुत्र जिन्हें मेघनाथ कहते थे वह त्रिपुरी के राजा थे। उन्होंने इन्द्र के राज्य को नष्ट किया था राजा रावण के पुत्र नाराय-णन्तक सौन्धुक के राज्य में राज्य किया करते थे जिसको आधु-निक काल में रूस कहा जाता है। पाताल पुरी में अहिरावण राज्य करता था जिसको आधुनिक काल में अमेरिका कहा जाता है। इसी प्रकार सर्वशः उन्हीं का साम्राज्य था। राम जैसे त्यागी महापुरुष ने उनके साम्राज्य को आकुंचन कर दिया और अपनी संस्कृति का प्रसार किया। राष्ट्र का; ब्राह्मणो का यह कर्त्तव्य हुआ करता है।

तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! आज मैं अपने वाक्यों को उच्चारण करता करता दूर चला गया। वाक्य यह उच्चारण करने जा रहा था कि आधुनिक राष्ट्र में न तो भाषा का विवाद

है और न अपना कोई वाद है परन्तु कोई वाद है तो अपने उदर का सबसे प्रथम विवाद है। उसके पश्चात और कोई कार्य है यहां निर्धनों की दृष्टि से नहीं दृष्टिपात किया जाता। जिस राष्ट्र में स्वर्ण का प्रसार होता रहता था, अन्न का प्रसार होता रहता था वहां आधुनिक काल के राष्ट्र में ऐसे ऐसे प्राणी हैं जिनको अन्न प्राप्त नहीं होता। वह अपने उदर को शान्त करके रात्री माता की गोद में चले जाते हैं। क्या इस राष्ट्र में क्रान्ति नहीं आयेगी ? मुझे तो प्रतीत हो रहा है कि राष्ट्र का जो उदर है उसमें एकत्रित करने की प्रवृत्ति आ गई है। राजा के राष्ट्र में चार वर्ण होते हैं – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। मानो राष्ट्र का जो वैश्यवाद है उनकी जब संग्रह करने की प्रवृत्ति बन गई है तो राष्ट्र का जो उदर है वह जीर्ण हो गया है इस जीर्णता को कौन नष्ट करेगा ब्राह्मण समाज होगा तो नष्ट हो सकेगा अन्यथा नष्ट नहीं होगा।

अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूं। अब मैं अपने पूज्य गुरुदेव से उच्चारण करुंगा वे अपने वाक्य उच्चारण करें मेरे गुरुदेव समय देंगे तो मैं इस वाक्य को और भी कल प्रकट करूंगा। आज तो मैं केवल यह उच्चारण करने चला हूं कि महात्मा दयानन्द ने एक सभा बनाई थी। परन्तु उस सभा में भी जब यहां उदर की पूर्ति करने का प्रश्न आया तो वह भी छिन्न भिन्न होने लगी, उसमें भी पांडित्य नहीं पांडित्य जब होता है जब पांडित्य के साथ में योग होता है। योग की सूक्ष्मता है। योगी कहते तो अवश्य हैं परन्तु वास्तव में योग होता नहीं। पांडित्व के साथ में योग होता है तो त्याग की प्रवृत्ति आ जाती है। यह आज के समाज में सूक्ष्मता है। इसको उन्नत बनाना यह सब महापुरुषों का कार्य

होता है। आयेगा कोई पुरुष। मेरी तो यह वेदना होती है कि कोई पुरुष आयेगा इसी वेदना को लेकर के और इसको उन्नत अवश्य बनायेगा। परन्तु आधुनिक काल में तो मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जो महान अग्नि प्रदीप्त होने वाली है वह अपने स्थान से चल दी है। समय निकट आ रहा है जब एक मानव दूसरे मानव के रक्त का पिपासी बनेगा। वह समय दूर नहीं है। मैं अपने पूज्य गुरुदेव से प्रार्थना करूंगा कि अब मुझे आज्ञा दें।

(हास्य के साथ) धन्य हो। मेरे पूज्यपाद ऋषिवर! आज तो मेरे प्यारे महानन्द जी ने नाना वार्त्तायें प्रकट की हैं। परन्तु इनके वाक्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे उनके हृदय में अधिक वेदना रहती है। क्यों रहती है इसको महानन्द जी ही जानते हैं। रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल कैसा है? ब्राह्मण समाज होना चाहिए क्योंकि हमारी जो परम्परा है, हमारा जो पांडित्य है वह ब्राह्मणों के लिये विशेषकर उच्चारण करता रहता है, वेदों में मन्त्रों के मन्त्र ब्रह्म सूक्त आते रहते हैं, ब्राह्मणत्व की विवेचना और चर्चायें आती रहती हैं। अब मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक वाक्य बहुत सुन्दर कहा है कि ब्राह्मण उदार होना चाहिए। वास्तव में यह वाक्य बहुत सुन्दर है जितना यौगिक पुरुष होता है उसको अभिमान नहीं होता; जितना बुद्धिमान होता है उसे भी अभिमान नहीं होता। वह साधारण बुद्धि को त्याग करके मेधा में चल जाता है, मेधा को त्याग करके वह ऋतम्भरा में चला जाता है और ऋतम्भरा को त्याग करके वह महान् पुरुष प्रज्ञावी के दर्शन कर लेता है। उनके द्वारा अभिमान की मात्रा नहीं होती, उनके पापों की प्रतिष्ठा नहीं होती। प्रतिष्ठा किनमें

होती है जिनके द्वारा अपनी वाणी पर, अपने हृदय पर स्वयं और आत्मा पर श्रद्धा नहीं होती। ऐसा वेद का वचन कहता है मैं नहीं कहता और न महानन्द जी ने ही उच्चारण किया है इन्होंने पांडित्य की दृष्टि से कुछ दृष्टिपात किया वह बहुत सुन्दर। इन्होंने नाना महापुरुषों की चर्चायें की हैं उन चर्चाओं में कटुता भी है जैसे इन्होंने किसी महापुरुष का नामोच्चारण किया मुहम्मद परन्तु उनके विषय में इनकी कदापि आस्था नहीं है। क्यों नहीं है मैं नही जानता क्योंकि इस काल को यही जानते हैं। रहा यह वाक्य कि इन्होंने बहुत से राष्ट्रों की चर्चा यें की पुस्तकों को अग्नि के मुखारविन्द में जाने के लिये भी कहा है परन्तु इसकी पूर्ति तो बुद्धिमानों के द्वारा, यौगियों के द्वारा प्रायः होती रहती है और होती रहेगी। रहा यह वाक्य कि आरण्यक और शतपथ, गोपथ नाना प्रकार की जो पोथियां थी जो महर्षि याज्ञवल्क्य महाराज और भी नाना आचर्यो के विचार थे वह भी अग्नि में चले गये वह वास्तव में इनके लिये बड़ा कष्ट का समय रहा है क्योंकि मुझे तो परम पिता परमात्मा की कृपा से इन महापुरुषों के दर्शन करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। हम तो यह भी कहा करते हैं कि इनका ज्ञान, इनकी प्रतिभा बड़ी पांडित्यमय थी। आज हम अपने जीवन में इनके वाक्यों को लाने का प्रयास करें। और त्यागी और तपस्वी बनने का प्रयास करें। त्यागी तपस्वी कौन होता है जैसा मैंने कल के वाक्यों में और आज भी कहा है कि हृदय विशाल होना चाहिये। जितना व्यापकवाद मस्तिष्क में होना ही जीवन उन्नत, मानवता से परिपूर्ण होगा।

आज का यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। कल

समय मिलेगा तो दो प्रकार के महापुरुषों की चर्चायें जो प्रारम्भ की थीं वह कल उच्चारण की ·जा सकती हैं और मेरे प्यारे महानन्द जी समय चाहते हैं परन्तु जैसा इनका कल का समय आयेगा उसके अनुसार समय का विधान हम परिपूर्ण करेंगे। आज का वाक्य यह अब समाप्त होने चला है।

गुरु देव! यदि कल समय प्रदान कर देते तो बहुत ही सुन्दर होता।

(हास्य के साथ) अच्छा बेटा! कल का कल देखा जायेगा जैसा भी समय होगा। उसके अनुकूल वाक्य उच्चारण करायेंगे।

अच्छा भगवन्!

तो मुनिवरो! आज का यह वाक्य अब समाप्त हुआ। कल जैसा समय होगा उसके अनुकूल वाक्य प्रकट करेंगे अब वेद का पाठ होगा।

अहिंसा परमोधर्म

[यह प्रवचन ३ १०-६४ को गीताभवन जम्मू में दिया गया]

जीते रहो!

देखो मुनिवरो। अभी अभी हमारा कुछ वेद मन्त्रों का पाठ प्रारम्भ हो रहा था। आज तुम्हें प्रतीत हो गया होगा जिस वेद ध्वनि से हमने वेद पाठ किया। बेटा! आज तो कुछ वाक्य उच्चारण करने का समय नहीं आज तो अपने कर्मों में उन फलों को जो किसी समय में किया गया था भोगा जा रहा है। कोई समय था जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत प्रोत होता था और जिस समय यह वेद ध्वनि अन्तरिक्ष में रमण करती थी तो मार्ग में विचरण करने वाले मृगराज भी इन वेद मन्त्रों को पान किया करते थे। एक समय मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि भगवन्! यह मृगराज आपके चरणों में क्यों हैं तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक ही उत्तर दिया था कि मेरे हृदय में अहिंसा परमोधर्म है। जब मेरे द्वारा किसी को नष्ट करने की भावना नहीं आती तो किसी में मुझे आहार करने की भावना क्यों आ जाये। तो आज का हमारा यह वेद पाठ निर्भयता का पाठ देता चला जा रहा था।

आज मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव की कुछ चर्चायें प्रकट कीं कि मार्ग में विचरण करने वाले मृगराज और पक्षिगण मौन रहते थे इसका मूल कारण था कि जो मानव वेद का प्रसारण करता है प्रत्येक प्राणी के लिये कल्याण की भावना उसके अन्तःकरण में होती है। जब अन्तःकरण में संसार के प्राणी मात्र के लिए कल्याण की भावना होती है तो उस समय उस

महान् आत्मा के वेद गान को मृगराज क्या, पक्षिगण क्या, सब हो उस वाणी के लिये लालायित रहते थे। मूल कारण क्या कि उनका हृदय इतना उदार और पवित्र था और उनके हृदय में इतना ओज और तेज था कि मृगराज को भी अपने आधीन बना लिया करते थे।

तो मेरे भोले आचार्य जनो! आज का हमारा वेद पाठ क्या क्या कह रहा था मैं संक्षेप से वार्त्ता प्रकट करता चला जाऊंगा। इतना समय नहीं कि विस्तार से इन वेद मन्त्रों को प्रकट करायें। आज के वेद मन्त्र का मूल क्या था कि संसार में अहिंसा परमोधर्म का पालन करना चाहिये। जब संसार में मानव अहिंसा परमोधर्म का पालन करता है तो पवित्र होता चला जाता है। जो मानव दूसरे जीवों को भक्षण करने वाला होता है उसका अन्तःकरण कदापि भी पवित्र नहीं बन सकता। मानव में अहिंसा परमोधर्म की भावना होनी चाहिये।

अहिंसा परमोधर्म किसे कहते हैं इसको जान लेना चाहिये। अहिंसा परमोधर्म आत्मिक बल को कहते हैं। शुद्ध आहार और व्यवहार को कहते हैं; कटुता को नष्ट करने को इन सभी को विचारने को हमारे यहां अहिंसा परमोधर्म कहते हैं। आगे राष्ट्र का भी इसी से निर्माण होता है। अहिंसा पमोधर्म का केवल यही अभिप्राय नहीं कि कोई द्वितीय राष्ट्र का द्रोही है, राष्ट्र पर आक्रमण हो रहा है और अहिंसा परमोधर्म को धारण किये विराजमान है। इसे अहिसा परमो धर्म नहीं कहते। वेद ने कहा है "अहिंसा वरतेति कचूति विश्वम् भवेनीतो यजताः।" "रुढ़िते घृणाः वाचन्योति दूरश्चते नष्टो भ्रष्टति गच्छता क्षत्रे द्रोहणाः।" यदि राष्ट्र पर किसी प्रकार का आक्रमण हो रहा हो तो राजा के लिये अहिंसा परमोधर्म और है और ब्राह्मण के लिये अहिंसा

परमोधर्म और है, भिन्न भिन्न प्रकार की संज्ञा वेद ने कही है। राजा को अहिंसा परमोधर्म का पालन करना चाहिए, शुद्ध पवित्र उसका आहर होना चाहिए, राष्ट्र में सदाचार और शुद्ध आहार व्यवहार का नियम बना देना चाहिए जिससे किसी भी जीव का भक्षण नहीं होना चाहिए यदि उसकी सीमा पर या राष्ट्र द्रोही हो तो उसे गदा सहित नष्ट कर देना चाहिए, यही उसका सदाचार, यही उसकी संस्कृति और यही उसके लिए अहिंसा परमो धर्म है।

आज हम अहिंसा परमोधर्म इसे नहीं कहते कि आज अपने आहार व्यवहारों में, चरित्रता में सूक्ष्मता है उन पर नाना प्रकार का आक्रमण हो रहा है इसको शान्ति नहीं कहते। शान्ति उसे कहते हैं जब मानव की आत्मा में और राजा के राष्ट्र में रहने वाली प्रजा में शान्ति हो। जब राष्ट्र की प्रजा के हृदय में शान्ति होती है तो यथार्थ है कि उसके राष्ट्र में शान्ति है और स्वयं उसमें शान्ति होती है। यह है राजा का अहिंसा परमोधर्म। प्रजा को चिन्ता किन कारणों से रहती है? प्रजा को चिन्तायें उस काल में होती हैं जब मानव अपने जीवन को स्वार्थी बना लेता है। जहां भी मार्ग में जाता है वहीं स्वार्थ को आगे लेकर के चलता है तो निश्चित है कि तीन जन्मों में भी उसको शान्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी क्योंकि उनके हृदयों में स्वार्थ है, ग्लानियां भरी हुई हैं, उनके अन्तःकरण में दूसरों को नष्ट करने की भावनायें रहती हैं, वह प्रजा कदापि भी नहीं पनपा करती है। जब प्रजा में ऐसी भावनाएं रहती हैं तो वह भावनाएं राजा तक जाती हैं, राजा का अन्तःकरण भी इसी प्रकार का बन जाता है क्योंकि राजा के द्वारा जैसी वासना जाती है, भिन्न भिन्न चर्चायें जाती हैं तो राज्य का भी विचार

उसी प्रकार का बनता है। यदि राजा के द्वारा ब्राह्मण की अनुमति जाये, ब्राह्मण उस नीति का प्रसार करने वाला हो तो मुनिवरो! यह निश्चित है कि वह राजा सदाचारी और ब्राह्मण की अनुमति के अनुकूल कार्य ही करता चला जायेगा। परन्तु यहां आवश्यकता है अमूल्य वेद के प्रकाश की और अमूल्य वेद के पंडितों की जो संसार के ज्ञान और विज्ञान का राजा को ज्ञान कराते चले जायें।

आज का हमारा आदेश राष्ट्र के लिए ही नहीं उच्चारण कर रहा और और भी कुछ उच्चारण कर रहा था। यह तो मैंने राष्ट्र की कुछ संक्षेप चर्चायें प्रकट की हैं कि राष्ट्र का क्या कर्म हो जाता है, प्रजा का क्या कर्म हो जाता है। अशान्ति का क्या कारण है कि मानव के हृदयों में त्याग भावना नहीं रहती। यहां त्याग भावनाओं का बड़ा मूल्य माना गया है। हमारे वेद के आचार्यों ने सबसे प्रथम त्याग भावनाओं को माना है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत-प्रोत होकर के देखो कि उनके द्वारा कितनी त्याग भावना थी। संसार के लिए कितना कार्य करते थे। नित्य प्रति कुछ न कुछ धार्मिकता और आत्मिकता संसार को प्रसार किया करते थे। यह उनका कर्त्तव्य था। वास्तव में जो भी मानव संसार में आता है वह अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाने के लिये आता है और यदि उस का अन्तःकरण पवित्र होकर के द्वितीय उसके अन्तःकरण से कोई लाभ प्राप्त करना चाहता है तो करना चाहिये। उससे मानव के हृदय में एक उज्ज्वलता आती है।

देखो मुनिवरो! आज के वेद पाठ में केवल राष्ट्र की ही चर्चा नहीं थी माता का भी बड़ा सुन्दर वर्णन आ रहा था। आज के वेद पाठ में एक मन्त्र आया कि 'मातुस्तुतो दुर्गो

अन्चहेः आ प्राणी गृहस्थी विश्वम् भवनेति अश्चताः अन्तः भावनश्चति विश्वेन देवम् भवनेति अश्चताः वेदज्ञ ज्योति ज्ञानम् ममृतेनी अन्तः कृश्चत्ताः" वेद ने एक वाक्य कहा था कि हे माता ! तेरा जीवन संसार में बड़ा पवित्र है। तेरे जीवन में एक उज्ज्वलता है । तू आज अपने जीवन को महान् से महान् बना सकती है। आज तुझे पुनः से उस महानता को लाना है ।

आज से पूर्व काल में मैंने एक वाक्य कहा था । अब भी पुनः से उस वाक्य को उच्चारण करना चाहता हूं । मुनिवरो ! महाराजा वशिष्ठ जी ने कहा था कि वेद के अनुकूल माताओं को संसार में अपने पुत्रों को पवित्र बनाना है। उनके गर्भस्थल से जो उत्पन्न होने वाली सम्पत्ति है मानो पुत्र हैं, पुत्रियां हैं उन्हें सबसे प्रथम पवित्र बनाना है। उनके अन्तःकरण में उन भावनाओं को प्रविष्ट कर देना है जिनके द्वारा उनका जीवन सूर्य तुल्य प्रकाशमान हो। मुनिवरो ! मैंने एक वाक्य कहा था कि हे मेरी भोली माताओ ! हे मेरे भद्र मण्डल ! मेरे प्यारे ऋषि मण्डल ! संसार में कीड़े न उत्पन्न करो परन्तु वीर उत्पन्न करो। संसार में यदि जीवन चाहते हो, राष्ट्र चाहते हो, धर्म चाहते हो तो वीर उत्पन्न करो और कैसे वीर ? भगवान् राम जैसे वीर धर्मज्ञ, भगवान् कृष्ण जैसे धर्मज्ञ। यहां शिव जैसों को उत्पन्न कर दो यदि आज पुनः से संसार में स्वर्ग लाना हो तो। आज तुम्हारा यह राष्ट्र, संसार स्वर्गमय होता चला जायेगा। पुनः से विचार लेना चाहिये । मेरे यह वाक्य कुछ कटुता में प्रयोग होते चले जा रहे हैं परन्तु मैं कटुता में नहीं मधुरता में वेद के अमूल्य आदेश का कुछ प्रदर्शन करता चला जा रहा हूं।

हे मेरे भोले आचार्यजनो ! संसार में अपने जीवन को पवित्र बनाना है तो अपने जीवन की जितनी सम्पत्ति है, जितनी उज्जवल भावनायें हैं किसी को अर्पित कर दो, तुम्हारा जीवन भी पवित्र बनता चला जायेगा।

मुनिवरो ? आज हम क्या उच्चारण करने लगे। मैं माताओं के सम्बन्ध में चर्चायें करने लगा। देखो यहां बहुत पुनःकाल में सुरघति नाम के एक ब्राह्मण हुए। उनको देवी का नाम सुरधं-गनि था, उसको गायत्री भी कहते थे। वह नित्य प्रति गायत्री मन्त्रों का पठन पाठन किया करती थी। पठन पाठन करते हुए ब्राह्मण बुद्धिमान् हुआ तो बुद्धिमानों ने उनके नामों का परिवर्तन कर उनका नाम रेवघ अम्भ्रूत ऋषि रखा। रेवघ ब्राह्मण उनको उच्चारण करने लगे। रेवेभवो वचतम्। रेवेभवो ब्राह्मणः अश्चति। जो रेवघ अमृता, जो अनुसन्धान करने वाला हो, अपने जीवन को वेदज्ञ स्वरूप में रमण करने वाला हो उसको मुनिवरो ! वेदज्ञ गृहाः वाचनोति ब्रह्मणे। उसको सोमधीन और रैधनी, आसीन नामों से पुकारा जाता है। मैं इस विषय में अधिक प्रकरण नहीं ले जाना चाहता।

मुनिवरो ! उनकी जो धर्म देवी पत्नी थी उसको गायत्री भी कहते थे। कुछ समय के पश्चात् उनके गर्भ से एक बालक उत्पन्न हुआ। उस बालक के हृदय में बड़ा सौन्दर्य था। माता पिता ने उस बालक का नाम अत्रि नियुक्त कर दिया। वह बालक सुन्दर था, कोमल था, पूर्व जन्म के उज्ज्वल संस्कार लेकर के माता के गर्भ से उन्होंने जन्म लिया। उसका क्या कर्म रहता था कि वह न तो कोई वाक्य उच्चारण करता था और मग्न रहता था। ऋषि ने कहा कि देवी ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह बालक मूर्ख है। किसी किसी काल में इसे

कम्पन भी होती है। इसे मैं रुग्ण दृष्टिपात करता हूं। इसलिए तू बड़ी पापनी है जो तेरे गर्भ से यह महा पापी बालक उत्पन्न हुआ है। माता क्या कह सकती थी, वह तो अपने पुत्र को जन्म ही प्राप्त करा सकती थी और जिस समय वह बालक गर्भस्थल में था माता ने उस समय गायत्री छन्दों का पाठ करते हुए इस महान् बालक को जन्म दिया। जिस समय उस बालक की सात वर्ष की अवस्था हुई वह बालक अपने गृह को त्याग करके तपस्वी जा बने। उनका जीवन तपस्या में लीन हो गया और ब्राह्मण ने क्या किया उसने अपनी पत्नी गायत्री को जीवन भर के लिए दुहाग की स्थिति में परिणित कर दिया और यह कहा कि हे देवी! तू कलंकनी है, तूने मेरे गृह को कलंकित किया है, तेरे गर्भ से यह महान् मूर्ख बालक उत्पन्न हुआ; और गृह को त्याग गया। ब्राह्मण ने बालक के पवित्र जीवन को दृष्टिपात नहीं किया।

मुनिवरो! वह बालक गंगा के उच्च किनारे पर परमात्मा का चिन्तन, गायत्री छन्दों का चिन्तन करता था। पूर्व जन्म के महान योगी थे। कुछ समय के पश्चात् उनके हृदय की जो ग्रन्थि थी वह स्पष्ट हो गयी, उन्हें ब्रह्म ज्ञान जो पुनः था वही प्राप्त हो गया। जिस समय उनकी सोलह वर्ष की अवस्था हुई उसने सोचा कि मैं माता के दर्शन पान करूंगा। वह वहां से बहते हुए उस स्थान पर पहुंचे जहां माता भागनी कलंकनी थी। उस माता के द्वारा आये। माता ने अपने बालक को जान लिया कि यही मेरा बालक है। माता ने कहा कि अरे बालक! अरे अत्रे! तू बड़ा पापी है। माता क्यों? "मातश्चति विश्वम् भवनें कलंकता" तेरे पिता ने मुझे जीवन भर के लिए दुहाग दे दिया और यह कहा कि तेरे गर्भ से यह मूर्ख बालक

हुआ है इसलिए तू कलंकनी है, तू महापापनी है, ब्राह्मणी नहीं तू किसी जन्म की महान् राक्षसनी है। इन शब्दों का तेरे पिता ने प्रयोग किया है।

तो बालक अत्रे ने उत्तर दिया कि माता! "हे मातश्चति सुपुत्रा मनो अश्चचेः देवम् हिरणयोति गच्चताः" हे माता! तू मेरे पिता का पूजन नहीं करती। यदि तू मेरे पिता का पूजन करने वाली बन जाये और यदि वह तुझे अपना ले तो हे माता! तू सदा के लिए सुहागनी बन जाये। परन्तु तूने कल्पित पिता को अपनाया है। माता यदि तुझे अपनाना है तो मेरे वास्तविक पिता को अपना ले जिसने यह संसार रचाया है। आज तू उस पिता को अपना जिससे तेरा आत्मिक और मानसिक कल्याण हो करके तू सदा उसकी गोद में सुहागनी बनी रहे।

तो मेरे भोले आचार्य जनो! आज मैं क्या उच्चारण कर रहा था। यह उस बालक अत्रे का कथन है। माता को सुन्दर आदेश दिया जिसका सर्वस्व जीवन यज्ञों में रमण करता था, आत्मा का यजन करता था, नाना प्रकार के विचारों का यजन करता था। बालक अत्रे ने एक वाक्य और कहा था कि माता! संसार में प्रत्येक व्यक्ति कहता है मैं यजन करता हूं, यज्ञशाला में नाना प्रकार की सामग्री की आहुति देता हूं परन्तु हे मेरी प्यारी माता! मैंने अब तक यह अनुभव किया है कि वास्तव में यज्ञशाला में सामग्री को कोई स्थापित करता ही नहीं। यदि माता यज्ञशाला में कोई सुगन्धिदायक सामग्री की आहुति देता है तो हे मेरी भोली माता! वह कदापि भी सांसारिक प्राणी नहीं बनता। वह पारलौकिक प्राणी बन जाता

है और एक समय वह उस यज्ञ में रमण करता है जहां देवताओं का और महान् आत्माओं का यजन होता रहता है।

मुनिवरो ! यह कैसे माना जाये। बालक अत्रे ने कहा कि माता मैं आत्मा में यजन करता हूं। मेरी आत्मा की जो अग्नि है उसमें माता, मैं नित्य प्रति आहुति देता हूं और किन की आहुति देता हूं ? नाना प्रकार के जो विकार होते हैं उन सबकी आत्मा के मुखारबिन्द में आहुति अर्पित कर देता हूं। आत्मा उसे ग्रहण करती है और वह ज्ञान रूपी अग्नि मेरे जो नाना विकारों की आहुति बनी हुई है उसे भस्म कर देती है और भस्म करके मेरा हृदय निर्मल और पवित्र बन जाता है।

तो मेरे भोले आचार्य जनो ! आज हमें विचार लेना चाहिए कि हमें संसार में यजन भी करना है। परन्तु यज्ञ किसे कहते हैं ? आज यदि मेरी भोली माता यज्ञ करना चाहती है तो अपने गर्भ स्थलों से उन बालकों को उत्पन्न करे जैसे बालक अत्रे था, बालक नचिकेता था, उद्दालक थे, महर्षि सोमपान थे, महर्षि गरुड़ थे, महर्षि कागा थे, मारकन्डेय, ऋषि वशिष्ठ और विश्वामित्र, अगस्त्य और विभान्डक आदि नाना प्रकार के ऋषि थे। उनका जीवन संसार में शिरोमणि माना जाता है। इतनी जब चर्चायें स्मरण आती हैं तो हृदय गद्गद् हो जाता है। बालक नचिकेता की चर्चा जब स्मरण आती है तो हृदय और भी पवित्र होता चला जाता है। बालक नचिकेता का हृदय कितना उज्ज्वल था। आज मेरी भोली माताओं को उन भावनाओं को देना है अपने प्यारे पुत्रों को जिन भावनाओं से माता का गर्भ स्थल पवित्र होता चला जाये। माता का गर्भाशय उसी काल में सफल होता है जब गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक संसार में सूर्य की भांति प्रकाशमान हो।

यदि किसी बालक ने माता के गर्भ से जन्म लिया और कीड़े की भांति क्रीड़ा करने लगा तो माता का गर्भ सफलता को प्राप्त नहीं होता। वह तो ऐसा ही जन्म लिया न लिया, उससे कोई लाभ नहीं। आज यहां जन्म देना है तो ऐसे महान् व्यक्तियों को जन्म देना है जिससे उन माताओं का हृदय, माताओं की जो उज्ज्वलता है वह सूर्य और चन्द्र को कान्ति के तुल्य संसार और अन्तरिक्ष में रमण करती रहे।

मुनिवरो! एक नहीं मुझे नाना प्रकार के प्रमाण स्मरण आते हैं। कल का भी मुझे कुछ प्रकरण लेना है केवल यह लौकिक वार्तायें ही नहीं प्रकट करनी हैं आज वेद के सम्बन्ध में भी कुछ जो कल का वाक्य था उसको भी कुछ लेना है। वाक्य यह चल रह था बालक अत्रे का प्रमाण देने का। वाक्यों का अभिप्राय यह था कि बालक अत्रे का जीवन कितना पवित्र था। जब पिता ने यह श्रवण किया कि मेरा बालक तो इतना उज्ज्वल है कि संसार उसका पूजन करता है तो पिता ने उसे अपनाना चाहा और कहा "पुत्रवते ब्रह्मणे अश्चति गृहणी अश्चति" आजा तू मेरे गृह में आ जा तुम ब्रह्म बालक हो। उस समय उसने कहा प्रभु! 'हे पित्तरो भवतेनि' मैं आपकी आज्ञा को स्वीकार कर सकता हूं परन्तु तुमने मेरी माता को मेरे ही कारण कलंकनी बनाया आज मैं ऐसा कारण नहीं बनना चाहता कि कल को तुम मुझे ब्रह्मपुत्र कह करके ठुकरा दो क्योंकि 'पितये भवेतो निश्चतो स्वार्थंम भवते' जब मानव के हृदय में स्वार्थ आ जाता है, तो वह न तो पुत्र को ही स्वीकार करता है न पत्नी को। वह जीवन के प्रत्येक साथी को ठुकरा सकता है। हे पिता! तुम्हारे हृदय में स्वार्थ भावना आ गई है। यदि स्वार्थ भावना न आती तो अपने जीवन साथी को आप कलंकनी न उच्चारण करते।

यह तो दोनों का ही 'गृह अश्वपति प्रवश्चम भवतेती कायाः भाग्यम भवतेनी' यह दोनों का भाग्य होता है कि पुत्र या पुत्री सौभाग्यनी और विचित्र हो अन्यथा मूर्ख हो। दोनों का भाग्य निर्णीत होता है। पिता ने बहुत कुछ कहा और बालक ने गृह में प्रवेश किया। वह बालक अत्रि मुनि के नाम से पुकारा जाता था जिसका जीवन संसार में अग्रगण्य माना जाता है। ऋषि मुनियों की प्रणाली में उनकी गणना की जाती है। तो आज हमें विचार लेना है।

मुनिवरो! एक समय महर्षि लोमश मुनि गरुड़ मुनि महाराज से बोले यह गरुड़ भाव तुम में कहां से आया। गरुड़ तुम्हें क्यों कहते हैं। उस समय उन्होंने उत्तर दिया 'गरुड़ भवतति अश्चताः" मुझे गरुड़ ही कहते हैं। मैं वह गरूड़ कहलाता हूं जो गरुड़ सर्प को निगल जाता है। वैसों को ही गरुड़ नहीं कहते। मैंने सर्प रूपी जो यह मन है इसको निगल लिया है। इसलिये मुझे सब गरुड़ नाम से पुकारते हैं। तो मेरे भोले आचार्य जनो। आज हमें प्रत्येक वाक्य को विचार लेना चाहिये। उज्ज्वल से उज्ज्वल जो पद्धति है उसे भी हमें विचार लेना चाहिये कि हम कहां हैं और किस प्रणाली में चले जा रहे हैं और क्या हमारी रूप रेखा है, किस वाक्य को प्रकट करना है।

हमारे वाक्यों को उच्चारण करने का क्या अभिप्राय था कि हमारे यहां पुरातन काल में भिन्न भिन्न प्रकार की उपाधि होती थी। नारद वह कहलाता है जो 'मन मन्चति'। हमारे यहां वेदाचार्यों ने इस नारद की कई प्रकार की व्याख्या की है। नारद मन को भी कहते हैं, नारद परमात्मा को भी कहते हैं, नारद नाम के ऋषि भी हुए। प्राणवाची शब्दों में इनको

चुनौती दी जाती है। आज यहां नारद किसे कहते हैं ? हमारे यहां परम्परा से नारद एक उपाधि मानी गई है जो आत्मिक तत्व-वेता बन करके अपनी स्थिति इस प्रकार बना लेता है जैसे मन बहुत चंचल होता है इसी प्रकार अपनी प्रवृत्तियों को बना लेता है कि उसका आत्मा अब यहां विचरण कर रहा है कि कुछ समय हुआ वहां। जब इस प्रकार की आकृति जिस योगी की हो जाती है उसको नारद नाम से पुकारा जाता है। कहते हैं नारद तो विष्णु लोक में भी रमण करता है और नारद मृत्यु लोक में भी रमण करते हैं और स्वर्ग में भी जाते हैं और नारद नारकिक भी बन रहे हैं। यहां इस प्रकार की वार्त्तायें आती हैं। अब हमें इसका क्या प्रकरण ले लेना चाहिये ? देखो मानव शान्त विराजमान है किसी बुद्धिमान की वार्त्तायें स्वीकार कर रहा है उस समय मन कहां रहता है ? बेटा ! उसके विचारों में और यदि देखो वह स्वर्ग की कल्पना आती है तो मन वहां पहुंच जाता है कहीं भगवान विष्णु के राष्ट्र में रमण करता है। कहीं यह मन नाना पापाचारों में रमण करता है तो इसी का नाम हमारे यहां नारकिक माना जाता है। मुनि नारद उसे कहते हैं जिस का आत्मा पवित्र हो; संसार में विचरण करने वाला और दूसरों के कल्याण के लिये हो। नारद अपने जीवन में ज्ञान विज्ञान में इतना प्रगतिशील होता है कि वह अपनी आत्मा को आज सूर्य लोक में रमण करा रहा है तो द्वितीय काल में चन्द्र लोक में, अक्षण समय हुआ तो ध्रुव लोक में रमण कर रहा है। तो जिसका आत्मा लोक लोकान्तर में रमण करने वाला हो उसको नारद नाम की उपाधि प्रदान की जाती है।

मुनिवरो ! आज नारद का तो कोई प्रकरण ही नहीं था

परन्तु क्या करें बेटा। जब ज्ञान के उस भयंकर बन में चले जाते हैं तो भिन्न भिन्न प्रकार की वार्ता उत्पन्न होती रहती हैं परन्तु समय इतना रहता नहीं कि इतनी वार्ता प्रकट करते चले जायें। कल हमारा संक्षेप वाक्य ब्रह्मा के सम्बन्ध में उच्चारण किया जा रहा था।

(महानन्द) गुरुदेव सृष्टि प्रारम्भ होने के सम्बन्ध में हमारे यहां भिन्न भिन्न विचार हैं। कुछ सिद्धान्तवादी यह मानते हैं कि इस प्रकृति में अंकुर रहते हैं और वह आत्मा जब प्रकृति और परमात्मा के मध्य में महत् में रमण होती है तो उस समय यह स्वयं इस प्रकृति से उत्पन्न हो जाते हैं और युवा होते हैं, वह पुरुष भी होते हैं, देव कन्याएं भी होती हैं, और उनसे यह संसार चलता है। तो दो प्रकार के विचार माने जाते हैं। कुछ ऐसा कहते हैं कि आदि ब्रह्मा हुए और ब्रह्मा के कुछ पुत्र हुए। कुछ पुत्रियां हुईं और उनसे इसी प्रकार संस्कार होते हुए संसार का विस्तार होता चला गया। इसमें आपका क्या मत है।

(हास्य के साथ) "बेटा! इसका उत्तर तो किसी काल में आ भी चुका है। यह वाक्य तो विस्तार का है कोई काल आयेगा जब प्रकट करेंगे। यह वाक्य तो नहीं की आज ही इसका उत्तर दे दिया जाये बेटा। इसके लिए समय चाहिए।

"भगवन्! आज हमको कहीं जाना नहीं तो समय को क्या? इतनी उत्तम रात्रि है आप उच्चारण करते चले जाओ।"

(हास्य के साथ) "बेटा! मैं तो पूर्व ही तुम्हें मूर्ख कहता हूं क्योंकि जितने भी वाक्य सब मूर्खों वाले। बेटा! प्रत्येक वाक्य का समय होता है और समय के अनुकूल वाक्य प्रारम्भ किया जाता है।"

"अच्छा तो कल का विषय।"

मेरे प्यारे महानन्द जी आज कुछ प्रश्न करते चले जा रहे थे इनका प्रश्न यह कि हमारे यहां दो प्रकार की चर्चायें मानी जाती हैं; दो नहीं परन्तु कई प्रकार की मानी जाती हैं। कुछ कहते हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में जब सृष्टि का प्रारम्भ हुआ तो उस समय शिव ने ब्रह्मा विष्णु दोनों को सृष्टि रचना के लिए उद्यत किया और ऐसा माना जाता है कि भगवती ने ब्रह्मा इत्यादियों को उत्पन्न किया उससे यह संसार चलने लगा। कुछ ऐसा मानते हैं कि आदि सृष्टि में ब्रह्मा हुए और ब्रह्मा के कुछ पुत्र हुए मरीचि नाम के अनन्य पुत्र हुए और उनसे संसार चलने लगा। आगे कुछ ऐसा मानते हैं कि जैसे एक विलंग होती है और बेल पर जैसे फल आता है और वह परिपक्व हो करके स्वयं उससे पृथक हो जाता है और जैसे माता के गर्भस्थल में बालक है जिसका माता की जो स्वांग नाम की पंचम नाड़ी है उसका सम्बन्ध बालक की नाभि से रहता है और गर्भाशय परिपक्व होने पर वह सम्बन्ध छूट जाता है इसी प्रकार कुछ ऐसा मानते हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में प्रत्येक देव कन्या और प्रत्येक मानव का सम्बन्ध प्रकृति रूपी नाभि से इनका सम्बन्ध रहा और युवा अवस्था में सब उत्पन्न हो गये जैसे वृष्टि होती है और वृष्टि से नाना प्रकार के जीव प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं। वृष्टि हुई और वृष्टि से मानो नाना परमाणुओं की रूप रेखा परिवर्तन हुई, उनका कुछ सूक्ष्म रूप बना और प्रकृति से उसका मिलान हुआ, अग्नि उसमें विद्युत नाम से रमण करती है, इन सबका मिलान हो करके नाना प्रकार के प्राणी जैसे क्रीड़ा करने वाले पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार नाना प्रकार का मत माना

जाता है इसका उत्तर समय मिलेगा तो किसी काल में दिया जायेगा। आज इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा

"भगवन्! इस वाक्य को कुछ संक्षेप में ले लेना।"

'नहीं बेटा! यह विस्तार का वाक्य है, संक्षेप से लेने में कोई लाभ नहीं"

'तो भगवन्! यहां लाभ के लिए कोई वाक्य उच्चारण किया जावे तो संक्षेप से वही लाभ प्राप्त हो जाता है"

"बेटा! यह किसी काल का विषय है प्रकट करेंगे वेद का पाठ आयेगा तो कुछ चर्चायें आयेंगी और इसका उत्तर दे सकेंगे"

तो मुनिवरो! अभी-अभी महानन्द जी इसमें कुछ उच्चारण करते चले जा रहे थे कि इसका संक्षेप में उत्तर दिया जाये परन्तु अब इतना समय नही परन्तु हम इस प्रकरण को अवश्य लेंगे किसी न किसी काल में। समय आता रहेगा इसका उत्तर देते रहेंगे। ज्ञान और विज्ञान से भरा हुआ बेटा! वेद मन्त्र है और नाना अनुभव ऋषि मुनियों से होते रहते हैं, वेद वाणी से प्राप्त होते रहते हैं। जो जो प्रकरण आयेगा लेते रहेंगे। आज इसका उत्तर नहीं दे सकेंगे।

वाक्य यह चल रहा था कि कल हम पाणिनि ऋषि महाराज के सम्बन्ध में कुछ वाक्य उच्चाण कर रहे थे। महर्षि पाणिनो जी के विषय में कुछ ऐसा कहा जाता है कि महाराज शिव ने डमरु बजायां और उस डमरु में से जो ध्वनि निकली उसे उन्होंने एकत्रित किया और उससे व्याकरण की उत्पति हुई हमने इसे और रूपों से प्रकट किया जो वास्तविकता थी। महर्षि पाणिनि जी महाराज ने व्याकरण का सुन्दर रूपों में प्रतिपदान किया। उन्होंने यह वाक्य कहां से लिए; ध्वनि

कहां से ली यह तो सब योगिक विषय माने जाते हैं इस यौगिक विषय में आज हम अधिक नहीं जाना चाहते। कल मैंने संक्षेप से यह वर्णन किया था कि सृष्टि के आदि में ब्रह्मा हुए जो महान् प्रजापति कहे जाते थे क्योंकि उन्होंने अपने को जाना और जान करके उस प्रणाली को जाना जिस यौगिक प्रणाली से स्वरों को जाना जाता है हमारे इस शरीर में परमात्मा ने जब माता के गर्भ में इसे रचा तो ७२,७२, १०, २०२ नाड़ियों से हमारे शरीर को परिणत किया है। इन सब नाड़ियों का समूह होते हुए इन सब नाड़ियों का सम्बन्ध मस्तिष्क से रहता है, मानो देखो उदर से, घ्राण से सम्बन्ध होता हुआ वह ब्रह्मरन्ध्र से माना जाता है जिसको हम मस्तिष्क कहते हैं, लघु मस्तिष्क कहते है। उसमें यह सभी वाक्य परिणत होते हैं। जब मानव योगाभ्यास करता है तो अपने मानसिकता के ऊंचे शिखर पर जाता है तो उसका मानसिकत्व कितना पवित्र बन जाता है। मैं तो यह भी कहा करता हूं कि पाणिनि महाराज ने जिन रूपों से व्याकरण का प्रतिपादन किया है वह बहुत हो सुन्दर माना जाता है परन्तु महर्षि पाणिनि जो बहुत सूक्ष्म समय हुआ तब हुए परन्तु मैं आदि की चर्चा करता चला जा रहा हूं। आदि में इस विद्या का विकास, इन अक्षरों का विकास कैसे हुआ, किसने किया ?

मुनिवरो सुनो ! आदि ब्रह्मा ने जैसा कल भी मैंने कुछ प्रकाश दिया कि इन सबका जो विकास होता है वह ओ३म् से होता है जो परमात्मा का भी मुख्य नाम उच्चारण किया करते हैं। प्रत्येक वेद मन्त्र ओं रूपी धागे से पिरोए हैं जैसे मुनिवरो ! एक मनकों की माला होती है वह धागे से पिरोई हुई होती है और उसके पश्चात् वह माला कहलाती है।

हमारे यहां एक विशेषज्ञ वाक्य और माना जाता है कि प्रत्येक वेद के प्रारम्भ में ओ३म् को ध्वनि होती है, प्रत्येक वेद के मन्त्र में ओं को उच्चारण किया जाता है इसका क्या कारण है? मैंने अपने ऋषियों से इस वाक्य को लिया। आदि आचार्यों का इसमें यह मत है कि जितने अक्षर उस वेद मन्त्रों में होते हैं उन सब का निकास ओं से होता है और वह कैसे होता है? देखो प्रत्येक अक्षर को ले लो 'अ' को ले लो ओं से बनता है उसको इस प्रकार न ले करके उसकी मात्रा ली जाये तो वह और रूपों से अक्षर बन जाता है परन्तु वह ओं ही की शाखा मानी जाती है। जितने अक्षर होते हैं वह सब अक्षर ओं रूपी धागे से पिरोये हुए होते हैं उन्हीं में उनका सम्बन्ध होता है। जैसा मैंने कल के वाक्य में भी कहा था कि यह जो संस्कृत है; वेद वाणी है इसका सम्बन्ध प्रत्येक भाषाओं से रहता है क्योंकि जैसा मैंने अभी कहा है कि प्रत्येक वेद मन्त्र का जो मिलान है वह ओं से रहता है क्योंकि ओं से अक्षरों का निकास होता है और जिन अक्षरों का निकास होता है वह वेदमन्त्रों में विराजमान हैं। उन अक्षरों की शृंखला का नाम वेद मन्त्र माना जाता है। उन्हीं अक्षरों का संकलन जब मात्राओं में कटिबद्ध कर देते हैं तो वह एक वेद ऋचा बन जाती है। परन्तु उस वेद ऋचा का जो सम्बन्ध है वह मूल से अवश्य रहता है जैसे एक वृक्ष है परन्तु उसका मूल है जड़ और यदि जड़ का सम्बन्ध अलग हो जाता है तो उस वृक्ष का संसार में कुछ नहीं बनता इसी प्रकार यह जो ओं है यह एक प्रकार का जड़ माना गया है और यह जितना वेद मन्त्र है, ऋचायें हैं यह सब उसकी शाखा मानी जाती हैं तो आज हम उच्चारण कर रहे थे कि इसको कैसे जाना

जाता है। मुनिवरो ! देखो हमारे मस्तिष्क में एक त्रीकट नाम की नाड़ी होती है और एक जटत नाम की नाड़ी होती है और एक सुभांग नाम की नाड़ी होती है। इन तीनों नाड़ियों का जो मिलान है वह ओं जैसा आकार होता है परन्तु जो योगी होते हैं वह जानते हैं कि योगाभ्यास में जब हम जाते हैं तो वह जो तीन प्रकार की नाड़ी हैं वह एक प्रकार का चक्र सा होता है और जब प्रकृति और प्राण का इन नाड़ियों से मिलान होता है तो नाड़ी एक प्रकार से अपनी परिधि को त्याग करके दूसरी परिधि में परिणत हो जाती हैं और परिणत होने से उसका ओं जैसा आकार होता है और ओं रूपी जैसा आकार हो करके उन तीनों नाड़ियों का सम्बन्ध देखो एक करोड़ नाड़ियों से होता है और उन एक करोड़ नाड़ियों से सम्बन्ध हो करके वह नाड़ियां आपस में मिलान करती हैं और वह जो मिलान करती हैं वह प्राण और आत्मा की सहायता से करती हैं और जब उनका मिलान होता है तो उनमें से एक ध्वनि उत्पन्न होती है उस ध्वनि को जो जानता है वह व्याकरण में पारंगत कहलाता है। उन ध्वनियों को जानना हमारे यहां व्याकरण का एक विशेषज्ञ ज्ञाता कहलाता है। हमारे ऋषि मुनियों ने वेद मन्त्रों की ध्वनि को जाना और वेद मन्त्रों को एकत्रित किया परन्तु एकत्रित तो उच्चारण नहीं करना चाहिए यह परमात्मा का वेदज्ञ ज्ञान माना जाता है।

हमारे यहां वेद को परमात्मा का ज्ञान क्यों कहते हैं? मुनिवरो ! इसलिए कहते हैं क्योंकि यह प्रत्येक संसार की भाषाएं परिवर्तन शील हो जाती हैं परन्तु वेद का वाक्य परिवर्तन नहीं होता, यह अखण्ड रहता है संसार में क्योंकि इसका मिलान ओं से रहता है और जितनी भाषाएं होती हैं

उनका मिलान जड़ से न रह करके परिवर्तनशील कहलाते हैं। उनका मिलान ओं से सूक्ष्म हो जाता है इसी प्रकार आज मानव को विचार लेना चाहिये कि जिस मानव का मिलान उस परम पिता परमात्मा से रहता है उसका जीवन अग्रगण्य होता है और जिसका सम्बन्ध उससे छूट जाता है, दूर हो जाता है उतना ही परिवर्तनशील बनता रहता है।

तो मेरे भोले आचार्य जनो! आज मैंने कुछ आध्यात्मिक विज्ञान की चर्चायें की परन्तु यह हमारा वैज्ञानिक सम्बन्धित वाक्य है। प्रश्न यहां यह उत्पन्न होता है कि जब ओं परमात्मा का मुख्य नाम माना जाता है तो नाड़ियों का ओं रूपी जैसा सम्बन्ध क्यों? मुनिवरो! जब मानव योगाध्यान में जाता है, ध्यान योग में रमण किया जाता है तो वह ज्योति का ध्यान करता है, वह ज्योति में रमण करता है और वह जो ज्योति है उस ज्योति में जैसा भी तुम आकार देखो वह ही आकार तुम्हें प्रत्यक्ष होने लगता है, उसका कारण यह है कि वह ज्योति है उस ज्योति में प्राण और आत्मा दोनों का सम्बन्ध होने से जो भी दृश्य तुम अनुभव करोगे वही ज्योति अनुभव में आयेगा। क्यों आयेगा? उसका कारण यह है कि उस ज्योति का सम्बन्ध प्रकृति से भी है, उस ज्योति का सम्बन्ध प्राणों से है परन्तु दोनों से होने से आज तुम उसमें ओं का आकार देखना चाहते हो तो तुम्हें ओं का आकार अनुभव होने लगता है, वह जो नाड़ियों का सम्बन्ध है वह तुम्हें प्रत्यक्ष होने लगता है और यदि तुम प्रकृति के आवेशों में और प्रकृति को. ज्योति को जानना चाहते हो तो जो किसी काल में हमने वस्तु देखी है, दृष्टिपात की है, उच्च स्थान दिया वह ज्योति में अनुभव होने लगेगा। उसका मुख्य कारण यह है कि

यदि हम प्राणों को ऊर्ध्व गति में ले जाना चाहते हैं और ऊर्ध्वा गति हो जाती है तो उस समय हमें ओं का आकार प्रत्यक्ष हो जाता है और यदि हमें प्रकृति के आवेशों में और कोई ऐसा ठग मिल जाता है कि वह कहता है कि मैं योगी हूं, समाधि तुम्हें परिणत कराता हूं वह प्रकृति के नाना प्रकार के प्रकाश को उच्चारण करता है, वही आकार हमें प्रत्यक्ष होने लगते हैं क्योंकि उस ज्योति का सम्बन्ध प्रकृति से है और महत् प्राण से और प्राण का सम्बन्ध परम पिता परमात्मा से है। परमात्मा से होते हुए वह ओं के आकार वाली जो नाड़ी है वह ज्योति में प्रत्यक्ष होती हैं, उन नाड़ियों का सम्बन्ध प्रत्येक नाड़ी से होता है जितनी शरीर में नाड़ी होती हैं, मस्तिष्क में, लघु मस्तिष्क में होती हैं सब नाड़ियों से उसका मिलान रहता है और मिलान रहने से बेटा! उस समय संसार का ज्ञान और विज्ञान सब इस मस्तिष्क में ओत प्रोत हो जाता है।

धन्य हो भगवन्!

तो मुनिवरो! आज हमें अधिक वाक्य नहीं उच्चारण करना है, यह वाक्य मुझे समाप्त भी करना है यह उच्चारण कर रहे थे कि आज हमें प्रत्येक वाक्य को विचार लेना चाहिए। मैंने कल कुछ यह भी प्रकाश दिया था कि यहाँ महत् नाम शिव का है और पार्वती नाम प्रकृति का है जब यह महत् आता है संसार में इसका प्रकृति से मिलान होता है तो यह प्रकृति नाचने लगती है अपनी परिधि में। प्रगतिशील हो करके संसार लोक लोकान्तर, मानव का जीवन सब ही इससे उत्पन्न हो जाता है। यह वह मेरी भोली माता है, जिस भोली माता का पूजन आज हमें करना चाहिए। यह वह भोली माता है जिसे

हम पार्वती कहते हैं, जिसे हम प्रकृति कहते हैं। हमें प्रकृति का भी पूजन करना चाहिए, परन्तु हमें प्रकृति के पूजन में लिप्त नहीं हो जाना चाहिए। हमें वह जो प्रकृति का स्वामी शिव है उसकी पूजा करके उसके राष्ट्र में भी रमण करना चाहिए।

तो बेटा। यह आज का हमारा आदेश समाप्त होने जा रहा है विषय तो बहुत विशाल है परन्तु समय आज्ञा नहीं दे रहा है। आज के हमारे आदेशों का अभिप्राय यह था कि हमें अपनी मानसिक भावनाओं को और अपने विचारों को अहिंसा परमो धर्मः में परिणत कर देना है। हमें अपनी विचार धारा को ऊंचे से ऊंचे शिखर पर पहुंचा देना है। अब समय मिलेगा तो महानन्द जी के प्रश्नों पर इसके पश्चात् कुछ विचार किया जायेगा। अब हमारा यह आदेश समाप्त होने जा रहा है कल समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल होंगी। अब वेद का पाठ होगा इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त ॥

(८ मार्च १९६९ को गुजराती हाई स्कूल
मीरा सिकन्दराबाद में
दिया गया प्रवचन)

जीते रहो।

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां नित्य प्रति कुछ मन्त्रों का पठन पाठन होता रहता है जिसका कन मनोहर परम्परागतों से गठित है। तो आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम अपने उस देव की याचना करते चले जायें जिस परम देव ने इस सुन्दर संसार की रचना की है और जिस रचना के आधार पर मानव अपने जीवन को उन्नत बनाता रहता है। मानव ही नहीं प्रत्येक प्राणी उन्नत बनाता रहता है। वह वायु मण्डल में विचरण करने वाले हों अथवा जल में विचरण करने वाले हों, दो पद वाले हों अथवा चतुष्पद, प्रत्येक प्राणी उन्नत होता चला जाता है। यह उस परम पिता परमात्मा की महान् अलौकिकता का दिग्दर्शन है जिस दिग्दर्शन का पान करता हुआ मानव अपने जीवन को स्वतः उन्नत बनाता है। हमारे यहां प्रत्येक मानव यह घोष करता है कि मैं अहिंसा परमोधर्म की वेदी पर आता हूं। प्रत्येक मानव के हृदय में एक आकांक्षा रहती है और यह विचारधारा बनी रहती है कि अहिंसा परमोधर्म मानव का धर्म है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मानव का अहिंसा परमोधर्म ही धर्म है परन्तु विचार विनिमय यह करना है कि अहिंसा परमोधर्म कहते किसे हैं। प्रत्येक

मानव को उच्चारण करने के लिये वाक्य हैं। परन्तु अहिंसा परमोधर्म है क्या? मुझे स्मरण आता रहता है कि जिस समय महर्षि भृगु के आश्रम में आदि ऋषिवर पहुंचे जिसमें महर्षि सांडल्य, महर्षि मुद्गल, महर्षि सुकेतु आदि ऋषियों का समाज एकत्रित हुआ। महर्षि सांडल्य जो ने कहा कि महाराज हम आपके दर्शन करने आ पहुंचे हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि ऋत किसे कहते हैं? ऋत के सम्बन्ध में जब विचारधारा उनके समीप आई तो महर्षि भृगु जी ने कहा कि भाई मैं तो अनुसन्धान कर रहा हूं। चलो यह जो आश्रम निकट प्रतीत हो रहा है इस आश्रम में महर्षि पनपेतु जो निवास करते हैं उस आश्रम में चलते हैं।

तो मुनिवरो! जब मुद्गल ऋषि इत्यादि ऋषिवर महर्षि पापड़ी मुनि के आश्रम में पहुंचे तो महर्षि पापड़ी मुनि जो ने कहा कि आओ! उन्होंने उन्हें आसन दिया। आसनों पर विराजमान हो गये, पंक्ति लग गई। तो वहां यह प्रश्न उत्पन्न होने लगे कि महाराज! हम ऋत को जानने के लिये आये हैं। महर्षि पापड़ी जी ने कहा कि विराजो। ऋषिवर विराजमान हो गये और उनका वेदों का पठन पाठन प्रारम्भ होने लगा। जब वेदों की ध्वनि जटा पाठ में हुई और माला-पाठ की पुट लगी तो मार्ग से मृगराज आने प्रारम्भ हो गये। जब मार्ग से मृगराजों की भी पंक्ति लग गई तो वहां एक नवीन प्रश्न मानव के मस्तिष्कों में आना स्वाभाविक था। परन्तु ऋषियों का मस्तिष्क मस्तिष्क होता है वह साधारण मस्तिष्क नहीं होता। उनका मस्तिष्क तपा हुआ होता है। शान्त मुद्रा में विराजमान रहे। जब मृगराज आ गये तब महर्षि पापड़ी मुनि जो भी विराजमान हो गये। जब पठन पाठन प्रारम्भ हो होने वाला था तो विचार

विनिमय यह आया, महर्षि मुद्‌गल जी ने कहा कि महाराज मैं यह जानना चाहता हूं कि हमारे मध्य में यह मृगराज भी आ पहुंचे हैं। यह आपकी ध्वनि पान करते ही क्यों आ पहुंचे हैं। महर्षि पापड़ी जी ने कहा कि इनके हृदय में भी अन्तरात्मा है और तब आत्मा से वेदना उत्पन्न होती है क्योंकि आत्मा ज्ञान का स्रोत है; ज्ञान का भण्डार है। आत्मा से ही ज्ञान की उत्पत्ति हुआ करती है और आत्मा का भोजन जब मानव को प्राप्त होने लगता है तो वह कोई भी प्राणी हो। जब आत्मा का भोजन प्राणी को प्राप्त होने लगता है तो आत्मा से प्रेरण आती है, मनोराम से वाध्यतित हो जाता है। वह हिंसक प्राणी अपनी हिसा भाव को त्याग करके अहिंसा परमोधर्म की पवित्र वेदी पर आ जाता हैं। इसलिये यह हमारे आश्रम में आ पहुंचे हैं कि हमारा जो हृदय स्वच्छ महान् है। देखो जितना भी हृदय स्वच्छ और महान् होगा उतना उसका वाक्य तपा हुआ होगा और जितनी वाक्यों में तपस्या होगी, जितना वाक्य शोधन किया होगा, उतना ही दूसरे प्राणी के अन्तःकरण को पवित्र बनाने वाला होता है।

तो मुनिवरो! जाब महर्षि पापड़ी जी ने यह वाक्य उच्चारण किया तो ऋषि मौन हो गये। मुद्‌गल ऋषि ने पुनः प्रश्न किया कि महाराज मैं यह जानना चाहता हूं "ब्रह्मे काता प्रति अस्ति विश्वानम् नमो जानम् मा मानूचम् ब्रह्मे वाणी शब्दा उत्पत्तम् न हस्तेः" ऋषि ने कहा कि महाराज मैं यह जानना चाहता हूं कि शब्द की उत्पत्ति क्या है? ऋषि ने कहा कि शब्द की जो उत्पत्ति है वह मानव के अन्तरात्मा से उत्पन्न होता है परन्तु उसका जो बाहरीय रूप है वह अन्तरिक्ष और ऋत दोन मिल करके उस शब्द में एक ओज आ जाता है। ओज होने

से वह जैसा आत्मा स चला था वास्तव में वैसा इन्द्रियों तक नहीं रहता क्योंकि इन्द्रियों में जाकर के उस शब्द को रूप रेखा परिवर्तित होती रहती है और जब अन्तरिक्ष में आता है जितना वाणी का और तड्डुओं का जितना भी दुर्गुण होता है, जितना दबाव होता है, जितना उग्रायण होती है उतनी शब्द में उग्रता प्रारम्भ हो जाती है। उसी उग्र भाव से उसका ओजस्वी रूप बन जाता है। जब ऋषि जी ने यह उत्तर दिया कि हे मुदगल ऋषि जी! इसीलिये शब्द की महानता होती है परन्तु शब्द का जो विकास है वह अन्तरात्मा से है। परन्तु वह मन के क्षेत्र से भी परे से शब्द की उत्पत्ति उत्पन्न होने लगती है क्योंकि आत्मा से वेदनायें, धारायें चलती हैं वह धारायें प्राणों के द्वारा रमण करती हुई मन के द्वारा, मन से इन्द्रियों के द्वारा और इन्द्रियों से उसका बाहरिय रूप बन जाता है। इसलिये यह आत्मा की ही वाणी है जिसको हमें श्रवण करना है। बिना आत्मा के मानव शब्द भी उच्चारण नहीं कर सकता।

मुनिवरो। मुझे एक वार्त्ता बार बार स्मरण आती रहती है जिसका उल्लेख मैंने कई काल में प्रकट भी किया है आज भी मुझे सौभाग्य प्राप्त होगा। परन्तु आज मैं केवल यह वाक्य उच्चारण करने जा रहा हूं कि सांडल्य जी ने यह पुनः यह कहा कि महाराज इस मानव की वाणी में कौनसी शक्ति है जो यह हिंसक प्राणी जो मानव का भक्षण कर जाते हैं वह हमारे मध्य में विराजमान हैं और ऐसे शान्त मुन्द्रा में हैं जैसे जड़ तू ही। उस समय महर्षि पापड़ी जी ने कहा कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसा इसके ऊपर अध्ययन किया है, विचार विनिमय किया है कि मानव का अन्तःकरण

क्योंकि मानव के श्वासों में से परमाणु जाते हैं, वह परमाणु हमारा हृदय शुद्ध और पवित्र होने के नाते वह परमाणु, वह वाणी के उद्गम जो मानो वायु मण्डल में वातावरण में परिणत होते हैं तो वह जो वायु है वह हिंसक प्राणियों के अन्तःकरण को छूती है और छूने के नाते वह परमाणु इतने प्रबल होते हैं; इतने शक्तिशाली होते हैं कि वह हिंसक परमाणुओं को नीचे दबा कर लेते हैं और जो अहिंसा परमोधर्म वाले जो धर्म परमाणु हैं वह इनके अन्तःकरण में स्थान ग्रहण करते हैं इसलिए इनकी जो वेदना है वह हिंसक न रह करके अहिंसा परमोधर्मी बन जाती है।

यह नाना प्रश्न होने के पश्चात् ऋषिवर मौन हो गये। ऋषियों ने कहा कि महाराज आज हम ऋत को जानने के लिए आये हैं। ऋत क्या है? उन्होंने कहा कि क्या तुम ऋत को अभी नहीं जाने हो। ऋत इसी को कहते हैं जिसमें ब्रह्म का वास रहता है, जिसमें ब्रह्म परिणत रहता है। मानो ऋत और सत्य दो ही पदार्थ हैं। सत्यता से गर्भ में भी कहीं-कहीं मानो मिथ्या रहता है और कहीं कहीं मिथ्या के गर्भ में भी सत्य रहता है! परन्तु यह जो ऋत है यह ऐसा शब्द है, ऐसी एक रचना है कि जो प्रत्येक प्राणी मात्र के हृदय में ओत-प्रोत हो रही है।

ऋत कहते हैं मानो विद्युत को जो विद्युत् सर्व संसार में, प्राणी मात्र में रमण कर रही है और वह क्रियात्मक होती चली जा रही है जिससे क्रिया उत्पन्न होती है उसी का नाम ऋत है। यह ऋत ही हमारा जीवन है और ऋत के आधार पर ही हमारे जीवन का प्रसारण होता रहता है। इसके पश्चात् सत्य आता है। सत्य क्या है? वास्तव में सत्य भी तीन प्रकार

का होता है। एक तो सत्यम् ही ब्रह्म है–एक तो ब्रह्म ही सत्य है--एक यह प्रकृति सत्य प्रतीत होती है और एक जीवात्मा हमें सत्य प्रतीत होता है। प्रकृतिवाद में जो सत्यता है उस सत्यता में परिवर्तन आता रहता है। जीवात्मा की सत्यता में भी परिवर्त्तन आता रहता है परन्तु वह जो ब्रह्म है उस ब्रह्म के सत्य होने में परिवर्तन नहीं होता। इसीलिए जिसमें परिवर्तन नहीं होता। उसी के गर्भ में यह सर्व संसार समाहित रहता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! मैं इस वाक्य को और गम्भीर नहीं बनाऊंगा। मैं इस वाक्य को बहुत ही सरलता में ले जाना चाहता हूं। आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम सत्य के ऊपर विचार विनिमय करते चले जायें। सत्य क्या है? तो देखो सत्य ब्रह्म है जो सर्वत्र विराजमान है, जो सच्चिदानन्द है, शुद्ध बुद्ध निरंजन है उसी को हमारे यहां सत्यदेव कहते हैं।

मुनिवरो! देखो एक प्रकृति हमें सत्य प्रतीत होती है। प्रकृति कहीं हमें स्थूल रूप में प्रतीत होती है तो कहीं सूक्ष्म रूप में। परन्तु उसका स्थूलता में भी अभाव है और सूक्ष्मता में भी अभाव। क्योंकि वह जो क्रिया है वह स्वयं प्रकृति को न होने के नाते उसमें सदैव सत्य का अभाव रहता है। है तो सत्य परन्तु उसको सत्यता में अभाव है जैसे मानव का शरीर है, जैसे मेरे प्यारे महानन्द जो विराजमान हैं, मैं इनको दृष्टिपात कर रहा हूं परन्तु यह स्थूल शरीर में परिणत हो जायें तो मुझे महानन्द जी अपने में अभाव प्रतीत होगा क्योंकि जब शरीर से यह आत्मा चला जाता है तो शरीर में वह महानता नहीं रहती है, इसकी सत्यता में परिवर्तन आ जाता है। एक

तो सत्य वह होता है जिसका परिवर्तन होता रहता है जैसे आज मुझे एक मानव प्रतीत हो रहा है कल वह नहीं रहेगा। परन्तु सत्य तो रहेगा। परन्तु उस सत्य में अभाव भी रहता है। यदि हम गम्भीरता में सूक्ष्मवाद में जाते हैं तो यह प्रतीत होता है कि वास्तव में उसमें भी अभाव नहीं है क्योंकि स्थूल रूप का रूपान्तर हो जाता है परन्तु जिन कणों से मुझे स्थूल संसार प्रतीत हो रहा था वह कण तो ज्यों का त्यों है; उसमें तो अभाव नहीं होता। उनका अभाव इसलिए क्योंकि वह प्रकृति के कण हैं और उनमें जो क्रिया है वह किसी चैतन्य की है, किसी सत्य की है इसी लिए सत्यता में भी मुझे परिवर्तन और अभाव प्रतीत होता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम ऋत और सत्य का विवेचन करने के लिए सूक्ष्म वार्त्तायें प्रकट करना चाहते हैं। उस वाक्य को लेना चाहते हैं कि मानव को ऋत और सत्य पर जाना है जिसको विचार विनिमय करते हुए मानव के जीवन में एक महानता की ज्योति प्रकट होने लगती है। उसके शरीर की दिग्दर्शिका होने लगती है। उसी को हमें जानना है, उसी का अनुसन्धान करना है। अनुसन्धान करते हुए हमारा जीवन, हमारी मानवीयता वास्तव में सदैव विचित्रता में परिणत रहती है।

तो आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा वेद का ऋषि यह क्या कहा रहा है कि हम ऋत और सत्य पर चिन्तन करने वाले बनें। महर्षि पापड़ी जी ने कहा कि हे शांडिल्य जी! तुमने यह श्रवण किया होगा कि ऋत सत्य उसी को कहते हैं, जिसके गर्भ में हिंसा नहीं होती। अहिंसा परमो धर्म और सत्यता को यहां पुट होती है क्योंकि सत्य नहीं होगा तो

अहिंसा परमो धर्मः भी नहीं होगा और जहां सत्य होता है, जहां ब्रह्म होता है वहां भय नहीं होता, लज्जा नहीं होती; शंका नहीं होती। जहां शंका लज्जा भय नहीं होते वहीं अहिंसा परमो धर्म होता है और वह परम धर्म कहलाया गया है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! इसीलिए आचार्यजनों ने कहा है कि हे मानव! यदि तू अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहता है, अपने जीवन में प्रतिभा को लाना चाहता है तो तेरे जीवन में एक महानता का दिग्दर्शन होना चाहिये और उन कर्मों को, उन विचारों को नहीं लाना चाहिये जिस कर्म के करने में शंका, लज्जा, भय की उत्पत्ति होती हो। वही कर्म तुम्हारे लिये अहिंसा कहलाया जाता है परन्तु जहां शंका-लज्जा नहीं होती, जहां हमारे मध्य में ब्रह्म क्रिया कर, रहा है, क्रीड़ा कर रहा है उसी को हमारे महां सत्य ब्रह्मे अहिसा परमोधर्म कहा जाता है इस सम्बन्ध में मुझे एक वार्त्ता स्मरण आती चली जा रही है कि हमारा जो यह अन्तरात्मा है यही तो प्रकाशक है, जहां ब्रह्म प्रकाशक है वहां आत्मा भी प्रकाशक है क्योंकि आत्मा के प्रकाश से ही मानव प्रकाशित होता है। एक आत्मा और एक परम आत्मा मानो परम आत्मा से यह विश्व प्रकाशित होता है और अन्तरात्मां से मानव का शरीर प्रकाशित होता है।

मेरे प्यारे ऋषिंवर! आज हम चिन्तन करते चले जायें। मुझे स्मरण आता रहता है एक समय राजा जनक के द्वार महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज जा पहुंचे। इस वाक्य को मैंने पूवकाल में भी प्रकट किया है आज भी मुझे स्मरण आता चला जा रहा है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बड़े आनन्द पूवक भ्रमण करते हुए राजा जनक के द्वार पर जा पहुंचे। राजा जनक ने उनका बड़ा आदर किया और ऊंचा स्थान

दिया और नाना प्रकार के पदार्थों का पान कराने के पश्चात् ऋषि चरणों की वन्दना की और वन्दना करने के पश्चात् कहा कि प्रभु मैं तो आपसे कुछ प्रश्न करने के लिये आ पहुंचा हूं। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि बोले राजन्! जो चाहते हो वह प्रश्न करो। उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूं कि हमारे इस मानव शरीर में जो नेत्र हैं यह किसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं? ऋषि, बड़े हर्षित हुए और बोले राजन्! इसको तो प्रत्येक बालक जानता है, सूक्ष्म सूक्ष्म प्यारे पुत्र भी जानते हैं कि हमारे जो नेत्र हैं वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित हुआ करते हैं क्यों कि सूर्य नेत्रों का देवता है। जब प्रजापति ने यह संसार रचा था उस समय सबसे पूर्व आदित्य देवता ने नेत्रों को चुना था।

यह सूर्य हमारा प्रकाशक है इसलिये प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता कि हमारे यह नेत्र किसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं क्योंकि सूर्य देवता है, सूर्य की प्रतिमा आती है मानव के नेत्र प्रकाशमान हो जाते हैं। मेरी प्यारी माताएं जब प्रातः-काल होता है, उषा नाम की किरण आती है, माता अपने पुत्रों से कहा करती हैं कि हे पुत्रो! जागरूक हो जाओ, इस समय सूर्य का प्रकाश आ गया है। नेत्रों का प्रकाश आ गया है। तो सूक्ष्म प्यारे पुत्र भी आसन को त्याग देते हैं और सूर्य के प्रकाश में प्रकाशित हो जाते हैं क्योंकि अंधकार में मानव शय्या पर विश्राम करता है और जब वह प्रकाश होता है तो उस समय उसे नवीन प्रकाश प्राप्त होता है और अपनी शय्या को त्याग देता है। तो नेत्रों का देवता सूर्य कहलाया जाता है।

उसके पश्चात् राजा जनक ने ऋषि से कहा कि भगवन्! मैं यह नहीं जान पाया हूं कि जब यह सूर्य नहीं होता उस समय नेत्रों

का कौन देवता कहलाता है ? हम किसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने कहा 'हे राजन्! जब सूर्य नहीं होगा उस समय हमारे नेत्रों का देवता चन्द्रमा होता है, चन्द्रमा प्रकाशक होता है, अपनी कान्ति को लेकर के आता है उसी कान्ति में जो हम सूर्य के प्रकाश में कर्त्तव्य कर रहे थे वही कर्त्तव्य हम चन्द्रमा की कान्ति में भी करने को तत्पर रहते हैं। चन्द्रमा की जो सुन्दर सुन्दर कान्तियां चलती हैं वे मानव को अमृत प्रदान करती चली जाती है। जहां पृथ्वी में आभूषणी आभाकर्त्री नाम की धातु होती है वहां श्वेतकेतु नाम की कान्ति जाती है जहां अमृत विशेषकर उत्पन्न होता है, मानो पात बनती रहती हैं उसी पात से नाना प्रकार की धातुयें उत्पन्न होती रहती हैं और हमारे नेत्रों में वह अमृत का मार्ग करती हैं मानो नेत्रों के पिछले विभाग में प्राणिक नाम की नाड़ियां होती हैं जिनके द्वारा मानो अमृत जाता है वह अमृत मानव को पवित्र बनाता है क्योंकि चन्द्रमा का सम्बन्ध जल से होने के नाते, समुद्रों से होने के नाते इसको अमृतम् कहते हैं। मन का विशेष सम्बन्ध चन्द्रमा के साथ रहता है चन्द्रमा में ही रस आता है और उस रस का सम्बन्ध मानव के मन से होता है। मन का सम्बन्ध नेत्रों से और इन्द्रियों से होता है इसीलिए हमारे नेत्रों और इन्द्रियों का देवता जब सूर्य नहीं होता तो यह चन्द्रमा होता है। चन्द्रमा हमें प्रकाश को अर्पित करने वाला है, पवित्रता प्रदान करने वाला है। उसी से हम अमृत को पान किया करते हैं।

राजा जनक ने पुनः प्रश्न किया कि महाराज! जब यह चन्द्रमा नहीं रहता, सूर्य नहीं होता उस समय हमारे नेत्रों का देवता कौन होता है ? उन्होंने कहा कि हे राजन्! तुम कैसे

भोले हो। जब यह चन्द्रमा-सूर्य नहीं होता तो हमारे नेत्रों के यह तारागण देवता होते हैं जिन्हें हम यह मण्डल कहते हैं। नाना प्रकार के मण्डलों से प्रकाश आता है। उसी प्रकाश में हमारे नेत्र प्रकाशमान रहते हैं। उसी प्रकाश से अपना कर्त्तव्य करने के लिये तत्पर रहते हैं। हे राजन्! उस परमात्मा की सृष्टि में इस ब्रह्माण्ड में तीन प्रकार के सौर मण्डल कहे जाते हैं। एक सौर मण्डल का अधिपति सूर्य कहलाया जाता है, द्वितीय सौर मन्डल का बृहस्पति कहलाया जाता है और तृतीय सौर मण्डल का अधिपति ध्रुव कहलाया जाता है यह तीन प्रकार के सौर मण्डल हैं। इन सौर मण्डलों में नाना सूर्य हैं, नाना चन्द्रमा हैं, नाना मंगल हैं, नाना बुद्ध हैं, नाना प्रकार के मण्डल कहलाये जाते हैं। हम उसके प्रकाश में अपना कर्त्तव्य करने के लिये तत्पर रहते हैं। ऐसे ऐसे लोक लोकान्तर हैं जिसमें नाना सूर्य समाहित हो जाते हैं। नाना पृथ्वियां हैं, नाना बुद्ध और वृहस्पतियां हैं जिनकी आज मैं गणना कराने नहीं जा रहा हूं। वाक्य केवल यह प्रकट कराने जा रहे हैं कि इतने विशाल विशाल मण्डल हैं आज वैज्ञानिकगण उसका अनुसन्धान करते हैं तो प्रतीत होता है कि प्रभु की कैसी उत्तम सृष्टि है कि सब लोक लोकान्तर अन्तरिक्ष में विराजमान हैं परन्तु एक दुसरा लोक एक दूसरे मण्डल तक, उनका मिलान् नहीं होता। बेटा! जब समय आता है तो जो सूर्य का प्रकाश आज है वह करोड़ों वर्षों के पश्चात् न रहेगा, जो कान्ति चन्द्रमा में है वह कुछ समय के पश्चात् नहीं रहेगी। इसका अभिप्राय क्या है कि परमात्मा की जो रचना है, उसका अन्त भी आना है, उसका समय भी आना है यह कैसी विचित्रता है यह सब लोक लोकान्तर अन्तरिक्ष में रहते हैं परन्तु एक

दूसरे के आकर्षण शक्ति से रहते हैं। वह प्रभु कितना सुन्दर वैज्ञानिक है, कितना महान् है कि उसको जो आकर्षण शक्ति है किसी भी काल में सूक्ष्म नहीं होती। बेटा! जब सूक्ष्म होती है तो लोकों का एक पिण्ड बन जाता है। पिण्ड बन करके उसके परमाणु बन जाते हैं यह संसार "अभ्रा गति नश्चतम् प्रभा अश्चति" प्रलय काल को प्राप्त हो जाता है। मेरे प्यारे ऋषिवर! जब प्रभु ने यह जगत रचाया दृष्टिपात आ रहा है यह कितना विचित्रता में प्ररिणत हो रहा है। सबसे प्रथम प्रभु का महत् और इस महत् से जो गति चली, महत् से जो एक प्रबलता चली उससे अन्तरिक्ष के परमाणुओं में गती आई। जब कि अन्तरिक्ष के परमाणुओं में गती आई तो उन परमाणुओं से वायु के परमाणुओं में गति आ गई और वायु के परमाणुओं से अग्नि के परमाणुओं में गति आ गई और अग्नि के परमाणुओं में गति आ जाने के पश्चात् जल के परमाणुओं में गति आ गई। जल बन गया और जब जल जिसे हमारे यहां 'रजन नमः सुप्रजाः' जिसे रज कहते हैं, जिसको हमारे यहां अमागृति कहते हैं। जल रजस्वला होता है। सूर्य जब तपता है तो पृथ्वी के परमाणु एकत्रित हो जाते हैं; स्थूल रूप में आ जाते हैं, यह पृथ्वी का मण्डल बन जाता है। यह कैसी सुन्दर प्रभु की रचना है जिसके ऊपर मानव को विचार विनिमय करना बहुत अनिवार्य है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! आगे मैं उच्चारण करता चला जा रहा था कि ऋषि ने कहा कि राजन्! हम तारा मण्डलों के प्रकाश से यह लोक लोकान्तरों की उत्पत्ति इस प्रकार हो जाती है क्योंकि जल के परमाणुओं में जो रज होता है जैसे रजस्वला–रज नाम पृथ्वी का है और स्वल नाम जल का है

क्योंकि पृथ्वी के परमाणु जल में रमण करते रहते हैं। आज यही स्वीकार नहीं कर लेना चाहिये कि हमारा यही समुद्र है, यही जल है। परमात्मा की सृष्टि में जहां भी लोक होगा वहां जल के परमाणु होंगे वहीं जल होगा और जैसा ग्रीष्म ऋतु में जो जल है वह कहां चला जाता है? मुनिवरो! सूर्य अपनी किरणों में अपने में धारण कर लेता है और वह जो किरणे हैं वह उन्हीं परमाणुओं को अन्तरिक्ष में विराजमान कर देती हैं। जब भी सूर्य की किरणें तेज हुई और मेघों का उत्थान होते ही वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। यह प्रभु की रचना कितनी विचित्र है। इसी को तो ऋत कहते हैं, इसी को तो महानता में परिणत किया गया है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! आगे मैं इस वाक्य को ले जाना चाह रहा हूं कि वेद के ऋषि ने कहा कि हे राजन्! हम तारा मण्डलों के प्रकाश से यह नाना तारा मण्डल बन जाते हैं। इनमें नाना प्राणी विश्राम करने लगते हैं। जहां जैसा लोक होता है और कैसी प्रभु की विचित्रता है कि जैसे यह पृथ्वी मण्डल है ऐसे पृथ्वी मण्डल पर पार्थिव तत्व वाले प्राणी रहते हैं और बृहस्पति मण्डल में वायु तत्व वाले प्राणी भ्रमण करते हैं, सूर्य में अग्नि तत्व-वादी प्राणी भ्रमण करते हैं, जहां जैसा लोक होगा, जिस लोक में जो तत्व प्रधान होगा उसी तत्व वाले प्राणी भ्रमण करते हैं। यह सृष्टि का चक्र बड़ा अनुपम है; बड़ा विचारणीय है। इसको विचारने के लिये मानव को अनुसन्धान करने की आवश्यकता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं कहां चला जा रहा था। वाक्य यह उच्चारण करता चला जा रहा था कि जब चन्द्रमा और सूर्य नहीं होता तो हम तारा मण्डलों से प्रकाशित हुआ करते

हैं । तो राजा ने कहा प्रभु ! जब यह तारा मण्डल नहीं होते तो हम किसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं ? उस समय ऋषि ने कहा राजन् ! इसको तुम जानते हो, प्रायः मानव जानता है, यह तुम्हें प्रतीत भी होगा कि तारा मण्डल ही बहुत विशाल है, बड़े उज्ज्वल हैं, हम इनके प्रकाश से तो प्रकाशित होते ही हैं परन्तु जब यह तारा मण्डल भी नहीं होते तो हम वाक के प्रकाश से प्रकाशित हुआ कहते हैं। वाक आता है जैसे एक मानव अन्धकार में विराजमान है उसे कोई भी वस्तु दृष्टिपात नहीं हो रही है, उस समय वाणी से कहता है अरे ! कोई है हमें मार्ग चेताने वाला। उस समय उसी वाणी पर दूसरा मानव जो मार्ग में स्थिर है वह कहा करता है कि आओ मैं मार्ग में स्थिर हूं, मैं आपको मार्ग चेताऊंगा। उसी शब्द के प्रकाश से मानव उस मार्ग को प्राप्त कर लेता है जहां से उस शब्द की उत्पत्ति हो रही थी। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि आज हमें यह जानना है कि यह शब्द की उत्पत्ति कहां से होती है ? शब्द अन्तरिक्ष से आता है। एक दूसरे प्राणी जब मिलान करते हैं, परमाणु जब संघर्ष करते हैं उनमें से शब्दों की उत्पत्ति होती है और वह शब्द है मानव की रसना के द्वारा। यह जो अन्तर आत्मा में अन्तरिक्ष विराजमान है इनके द्वारा स्वांस पर स्वांस द्वारा नाना प्रकार के परमाणु आते रहते है और वह परमाणु आवागमन करते हैं, उन्हीं परमाणुओं से अन्तर आत्मा को जो पवित्र ध्वनि है उस ध्वनि से बेटा ! शब्द की उत्पत्ति होने लगी है। याज्ञवल्क्य जी ने कहा है कि इसी को ले करके जब हम आगे चलते हैं मानो यह शब्द ही प्रकाशमान है, शब्द ही हमें प्रकाश का देने वाला है, यह अन्तरिक्ष से आता है, लोक लोकान्तर जो एक दूसर के

आकर्षण शक्ति से स्थिर हैं उनके मध्य में ही तो शब्द है। यदि शब्द भ्रमण नहीं करेगा तो आकषण शक्ति भी नहीं रहेगी। तो ऋषि ने कहा कि हे राजन्! हम शब्द के प्रकाश से प्रकाशमान् होते हैं।

राजा ने कहा कि हे ऋषिवर! जब यह शब्द नहीं होता तब हम किसके प्रकाश से प्रकाशवान् होते हैं? उस समय ऋषि ने कहा कि हे राजन्! जब यह सूर्य चन्द्रमा, तारा मण्डल नक्षत्र नहीं होते और शब्द भी नहीं होता तो उस समय हम इस आत्मा के प्रकाश से प्रकाशवान् हुआ करते हैं। आज हमें आत्मा को जानना चाहिए। आत्मा ही प्रकाश का देने वाला है इस शरीर में जब तक आत्मा विराजमान है, जब तक इसमें चेतना है और यदि आत्मा नहीं रहेगा तो बेटा! इसमें चेतना भी नहीं रहेगी। इसकी चेतना आत्मा के साथ चली जाती है। हे राजन्! इसलिए हमें आत्मा को जानना चाहिये। आत्मा के लिये तभी कहा जाता है कि आत्मा को जानो क्योंकि प्रकाश देने वाला तो शरीर में आत्मा विराजमान है। मानो मानव अन्धकार में है, कोई वाक्य नहीं है वहां वह कोई वस्तु को जानता है तो आत्मा में उसका ज्ञान है। उस ज्ञान के साथ में ही उस वस्तु को ग्रहण कर लेते हैं अन्धकार में। वहां सूर्य की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार हमारी जो अन्तर-आत्मा है वही प्रकाशक है; वही हमें प्रकाश देने वाला है और उस अनुपम प्रकाश को जानना चाहिये क्योंकि उस प्रकाश के जानने से हम शुद्ध, बुद्धता में परिणत हो जाते हैं और हम मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं।। जो मानव इस अन्तर-आत्मा को नहीं जानता, आत्मा को जानने का प्रयास नहीं करता कि यह आत्मा क्या है कि जो

प्रत्येक मानव को क्रिया प्राप्त हो रही है और परमाणुओं में सुगठित विचार आ रहे हैं, यह सुगठितता आ गई है, यह आत्मा जब इस शरीर से चला जाता है तो अरे! उस समय मुनिवरो! सूर्य भी है, मानव के नेत्र भी हैं परन्तु क्यों नहीं मानव प्रकाशवान् हो जाता। बेटा! प्रकाश देने वाला तो चला गया इस शरीर से। देखो शरीर है परन्तु यह शरीर केवल नेत्र रह गये हैं, सूर्य का प्रकाश भी है परन्तु वह प्रकाश जो प्रकाश में रमण करने वाला, अन्तर-आत्मा न रहा। इस लिये नेत्र भी नहीं रहे और देखो सूर्य का प्रकाश भी नहीं रहा।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि इस मानव को चेतना देने वाला आत्मा है इसलिये आत्मा को जानना हमारा कर्त्तव्य है। आत्मा को जानने से हमारा उत्थान होगा। संसार के नाना प्रकार के भोग विलास में मानव को शान्ति प्राप्त नहीं होती। मानव को यदि शान्ति प्राप्त होती है तो आत्मा के जानने में प्राप्त हुआ करती है जो मानव आत्मा के लिये निवेदत नहीं होता वह भी कोई मानव नहीं होता। आत्मा में ही मानव को हवि करनी चाहिये। आत्मा को जब हवि प्रदान की जाती है तो यह हवि इसमें ओत प्रोत हो करके मानव मोक्ष को और परमानन्द को प्राप्त हो जाता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मैं इस वाक्य को बहुत गम्भीर ले गया हूं। आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है। इसी को हमारे यहां ऋत कहा जाता है, इसी को जानना ऋत है क्योंकि अन्तर-आत्मा जिसके द्वारा मानव में चेतना आती है यह चेतना संसार में ओत-प्रोत है। इस चेतना पर मानव को अनुसंधान करना है। विचार विनिमय करना है कि चेतना

कहां से आई है, इस चेतना का मूल क्या है। आज हमें ऋत को जानना है। महर्षि पापड़ी जी ने कहा है कि हे शांडल्य जी। हे मुद्गल ऋषि महाराज। तुमने जान लिया होगा कि यह ऋत्त क्या है। संसार की जो परिक्रिया चेतनावादी है, जो चेतना है वह कहां से आती है, उसका मूल मन्त्र क्या है, उसकी मौलिकत्ता क्या है। इसको जान करके इसके अनुसार हमें अपने को पहुंचा लेना। इसी को हमारे यहां ऋत कहा जाता है। आज हम जिस चेतना से इन्द्रियों का पान करते हैं उसी चेतना का नाम ऋत कहा जाता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने कहा कि हे राजन्! यह तुमने जान लिया होगा। राजा जनक मौन हो गये। जब राजा जनक मौन हो गये तो ऋषि ने कहा कि अब तुम्हें ज्ञान हो गया है कि माता के गर्भस्थल में भी यदि जीवात्मा नहीं होगा तो माता के जो रजवीर्य के परमाणु हैं जिनसे शरीर सुगठित होता है उन परमाणुओं में भी स्थूलता किसी काल में आ ही नहीं सकेगी। इसीलिये आत्मा ही चेतनित रहता है आत्मा के कारण ही माता के गर्भस्थल पुत्र हो अथवा पुत्री हो वह पनपता रहता है और जरायुज परिपक्व होता रहता है यह सब आत्मा की ही चेतना है। इसीलिये मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हमें विचार विनिमय करना है और आत्मा को जानना है। आत्मा के आश्रय को जानना है जिससे हमारा अन्तर-आत्मा पवित्रता को प्राप्त हो जाये। इसीलिये वेद के आचार्य और दर्शनवादी यही कहते हैं कि आत्मा को जानो। आत्मा को जानना ही तुम्हारा कर्त्तव्यवाद है। इसी से तुम अपने शरीर रूपी राष्ट्र को उन्नत बना सकोगे।

मुनिवरो देखो! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने प्रस्थान किया

और महर्षि पापड़ी जो मुनि महाराज के आश्रम में जो नाना ऋषिवर पहुंचे उन्होंनें भी अपने अपने आश्रम को प्रस्थान किया कि हमारी पुष्टि हो गई। परन्तु अहिंसा परमोधर्म बेटा। उनके लिये होता है जो अन्तरात्मा को जानते हैं, जो अन्तर-आत्मा में ही वेदनीत रहते हैं क्योंकि आत्मा के ज्ञान में ही अहिंसा परमोधर्म होता है। आत्मा के द्वारा अन्तर द्वन्द्व आ जाने के कारण मानव में भय, लज्जा, शंका उत्पन्न होती रहती है उसी से वह प्राणी हिंसक बना रहता है। जिसका हृदय विशाल होता है, महान् होता है, पवित्रः होता है, अन्तर-आत्मा को जानने वाला होता है, वही संसार सागर में अहिंसा परमोधर्म का पालन कर सकता है। अन्यथा शब्दों में उच्चारण करते रहो इससे कोई लाभ नहीं है।

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय है कि हमें आत्मा को जनना जाहिये, आत्मा को जानने से हमारा कल्याण होगा। हमारी मानवता उन्नत बनेगी। आज का यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्यों का अभिप्राय है कि आज हम वेद के प्रकाश में रमण करें, आत्मा के प्रकाश को जानें, आत्मा ही हमारा प्रकाशक देव है और वही हमें चेतना देने वाला है इसलिए उसको जानना चाहिये। उसको जानने से संसार में और जानने योग्य वस्तु नहीं रह जाती। कल मुझे समय मिलेगा तो मैं आध्यात्मिक विज्ञान और भौतिक वाद की चर्चा प्रकट कर सकूंगा। आज का यह वाक्य समाप्त होता गया है अब वेद का पाठ होगा।

धन्य हो भगवन्!

तप

[दिनांक ८-४-६१ को ए० एस० हायर सैकन्डरी स्कूल खन्ना में दिया हुया प्रवचन]

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां नित्य प्रति कुछ मनोहर पठन पाठन का क्रम प्रायः परम्परागतों के आधारित प्रसारण होता रहता है जिससे हम जान सकते हैं कि हमारा जीवन परम्पराओं से सुगठित रहता है। हमारे जीवन में यदि परम्परा नहीं होगी तो हमारे जीवन का कोई आस्तित्व नहीं रह सकता।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज का हमारा वेद मन्त्र क्या कह रहा था ? आज के हमारे इस मनोहर वेद पाठ में कहीं शकुन्तला, कहीं धेनु और कहीं वसुन्धरा का वर्णन आता चला जा रहा था। हे मां वसुन्धरा ! तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाली है। हे कल्याणमयी मां ! हम तेरे समीप आये हैं तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाली है, हम अपने जीवन को उन्नत चाहते हैं। मां ! हम तेरे गर्भ में बसते हैं बसने के नाते वसुन्धरा कहते हैं। आओ मेरे प्यारे ऋषिवर ! हम उस महा मना मातेश्वर वसुन्धरा पालन करने वाली है। हमें महान जीवन प्रदान करने वाली है। हम उस माता वसुन्धरा को बारम्बार नमस्कार कर रहे हैं। इसलिए वेद ने नाना प्रकार

के पर्यायवाची शब्दों का विवेचन करते हुए कहा है कि वसुन्धरा पृथ्वी को भी कहते हैं. जो नाना प्रकार का खाद्य और नाना प्रकार का खानिज पदार्थ प्रदान करने वाली है जिसके गर्भमें हम नाना प्रकार की वनस्पतियों द्वार पनपते हैं। तो आज हम उस माता को वसुन्धरा कहा करते हैं। जब हम यह विचारने लगतें हैं कि वसु ब्रह्म मानो जो नाना प्रकार के खनिजों को उत्पन्न करने वाली है और मानव जीवन से उनका कितना सम्बन्ध है तो हमारा हृदय विशालता को प्राप्त होने लगता है। हम अपने हृदय में यह अनुभव करते हैं कि वह तो वास्तव में महामना है; हमारा कल्याण करने वाली है। आज हम उस वसुन्धरा के आंगन में आये हैं इसलिए हम उसे बारम्बार नमस्कार कर रहे हैं।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा वेद पाठ क्या कह रहा था? हमारा वेद पाठ यह उच्चारण करता चला जा रहा था कि हमारे यहां उस परम पिता परमात्मा की महिमा का जहां गुण गान गाया जाता है, प्रत्येक तत्व में जब विचारने लगते हैं तो हमें प्रतीत होने लगता है कि यह सर्वस्व ब्रह्माण्ड वसुन्धरा का स्वरुप ही है क्योंकि वसुन्धरा महामना प्रभु को भी कहते है जिसके गर्भ में यह सर्वस्व जगत् विराजमान हो रहा है। जिसकी परिक्रियाओं से यह पृथ्वी क्रियामान हो रही हैं, सर्वस्व ब्रह्माण्ड उसी के आश्रित भ्रमण कर रहा है। आज हम उस परम पिता परमात्मा को भी वसुन्धरा के रूपों में परिणत किया करते हैं और उसका गुण गान गाते हैं। गुणों का अनुवाद करते हुए कहा करते हैं कि वह प्रभु है, संसार का रचयित्ता है, क्रियात्मक है, सर्वस्व ब्रह्माण्ड, सर्वस्व प्राणी उसी के आँगन में रमण कर रहे हैं। जब हम सब उसी की ज्योति में व्याप रहे

हैं वह हमें व्यापक बनाता चला जा रहा है, प्रकाशमय बनाता चला जा रहा है तो हम उस प्रभु के गुण गान गाने में तत्पर रहते हैं। उसी के गर्भ में यह सर्वस्व लोक-लोकान्तर विराजमान हैं। उसकी महिमा बेटा! आदि ऋषिवर! आज हम उच्चारण करते चले जाएं कि वह जो वेद की अनुपम देन है, वह जो अनुपम प्रकाश है उसमें नाना प्रकार का ज्ञान और विज्ञान आता है! नाना प्रकार की प्रतिभा उसमें विराजमान होती हमें प्रतीत होती हैं।

मेरे प्यारे ऋषिवर! उस प्रभु की जो आनन्दमयी वेदवाणी को देन है, उसका अनुवाद करते हुए वेद का ऋषि कहता है; आचार्य कहता है कि हे महा प्रभो अक्रतेः। तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाला, जीवन को उदबुद्ध करने वाला है, तेरी ही महती अनुपम कृपा से यह हमारा जीवन उदबुद्ध हो रहा है। आज तेरी ही रचना हमें व्याप रही है, तेरी महानता में हम सदैव रमण करने वाले हैं। हमें जो नाना प्रकार का अज्ञान आता है वह हमें आपसे दूरी कर देते हैं। तो प्रभु! हम चाहते हैं कि सदैव प्रकाश में रमण करते रहें, आनन्द में ही रमण करते रहें क्योंकि हमारा जीवन सदैव आनन्द के लिए उत्पन्न होता है, जीवन की प्रतिमा को जानने के लिए उत्पन्न होता है। हमें प्रभु! ऐसा महान् सामर्थ्य प्रदान करो जिससे हम आपकी महती अनुपम कृपा के द्वारा आपकी महिमा को जानते हुए अपने मनुष्यत्व को जानते चले जाएं। हे प्रभु! यह आपकी अनुपम देन है। जब हम यह विचारते हैं कि यह जगत् आपसे ही व्याप्त हो रहा है तो प्रभु! हम कहां जाएं, किस आंगन में रमण करें।

बेटा। हम केवल प्रभु का गुण-गान गाने ही नहीं आये। संसार उस काल में उन्नत बनता है जब प्रत्येक मानव अपने-अपने कर्त्तव्यवाद का पालन करता चला जाता है जैसा मैंने कई काल में वर्णन करते हुए कहा है कि कर्तव्यवाद को ही कहीं कहीं धर्म कहा है। तो जहां कर्तव्यवाद होता है वहां मानव की प्रतिभा होती है; मानव का जीवन उन्नत होता प्रतीत होने लगता है।

मैंने कई काल में वर्णन करते हुए कहा है गुरु शिष्यों के सम्बन्ध में कि गुरु शिष्य उस परमात्मा को मध्य में विराज मान करके जब शिक्षार्थी अध्ययन करता है, उसकी बुद्धि में तीव्रता आती चली जाती है और आचार्य के हृदय में विशालता आती चली जाती है। परन्तु जब दोनों ही आचार्य और शिक्षार्थी जनों में स्वार्थवाद की अनुपमता आ जाती है उस समय न तो शिष्य ऊंचा बनता है और न गुरु ही तपता है क्योंकि संसार, सर्वस्त्र ब्रह्माण्ड तपस्या में ओत-प्रोत है।

मेरे प्यारे ऋषिवर। जब गुरु अपने कुल में तपता है और ब्रह्मचारी गुरु के कुल में तपता है, सूर्य अपने आंगन में तपता है, समुद्र अपनी परिनिधि में तपता है, पृथ्वी अपने आंगन में तपती है, चन्द्रमा अपने रसों में तपता तो इसी प्रकार यह जो सर्वस्त्र जगत है यह तप से ऊंचा बना है। पृथ्वी तपा करती है तो सुन्दर २ वनस्पतियों का जन्म होता है। मेरी पुत्री ब्रह्मचारिणी जब तपा करती है तो तपने के पश्चात् वह सुन्दर बालक को जन्म देती है। कणाद और गौतम जैसे ऋषियों का जन्म होता है, राम और कृष्ण जैसों का जन्म होता है। जब यह सूर्य तपता है तो समुद्रों से जलों का उत्थान होता है और जलों से मेघ बनते हैं और मेघों से सुन्दर धीमी धीमी वृष्टि

प्रारम्भ हो जाती है, उससे नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होने लगता है। इसी प्रकार यह चन्द्रमा जब शरद् ऋतु में तपता है, अपनी अमृतमयी ज्योति प्रदान करता है तो कृषक की जो भूमि होती है उसमें अमृत प्रदान करता है। जिससे वह सर्वस्व अन्न अमृतमय हो जाता है। यहां तक है कि माता के गर्भस्थल में जो जरायुज होता है वहां तक अमृत प्रदान करता चला जाता है।

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय है कि तपने से ही यह सर्वस्व जगत विराजमान रहता है। आचार्य के कुल में ब्रह्मचारी तपता है। हे ब्रह्मचारी! तू वास्तव में तपस्यामय है क्योंकि तेरा जीवन तप है। हे आचार्य जब तू अपने कुल में तपता है मानो जब तू विद्या से तपायमान हो जाता है-तेरा तप क्या है ? जब तू ज्ञानमयी ज्योति को ग्रहण कर लेता है तो तेरा जो तप है वह महान बन जाता है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! मुझे स्मरण आती रहती है तप की वार्त्ता। देखो तप मानव का विचार है, मानव का आहार और व्यवहार है क्योंकि जब आचार्य तपता है तो आहार और व्यवहार से तपा करता है परन्तु हमारे यहां परम्परा तप करने के लिए कहती है। मुझे स्मरण है बेटा! जब महर्षि पिप्पलाद मुनि के आश्रम में रेवक इत्यादि छः जिज्ञासु पहुंचे और कहा कि प्रभु! आपकी शरण में आए हैं। उन्होंने कहा कि क्या चाहते हो? उन्होंने कहा कि प्रभु! हम ऋत को जानना चाहते हैं, ऋत किसे कहते हैं? उस समय महर्षि पिप्पलाद जी ने कहा कि हमारे आश्रम का यह नियम है कि यह चार सौ गऊएं हैं इनका एक वर्ष तक लालन पालन

करो उसके पश्चात् तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकेगा यदि मैं जानता हूंगा।

तो मुनिवरो देखो! उन ब्रह्म जिज्ञासुओं ने एक वर्ष तक नियम धारण किया कि गऊओं का पालन करें। गऊओं का लालन पालन करते थे। एक वर्ष हो गया लालन पालन करते हुये। एक वर्ष के पश्चात महर्षि पिप्पलाद के चरणों में ओत प्रोत हो गये और कहा कि भगवन्! हम यह जानना चाहते हैं कि ऋत किसे कहते हैं? उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर क्या तुम यही जानना चाहते हो? उन्होंने कहा कि हाँ महाराज। तो उन्होंने कहा कि जिस शक्ति से तुमने एक वर्ष तक गऊओं का पालन किया उसी शक्ति को हमारे यहां ऋत कहते हैं।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! कितना संक्षिप्त उत्तर है ऋषि का। ऋषि ने कहा जिस आस्था से, जिन तरंगों से गऊओं का पालन किया है, संयम से रहे हो उसी को ऋत कहा जाता है। आज हम ऋत को जानना चाहते हैं। ऋत नाम है तपस्या का क्योंकि तपस्या एक रूप से ऋतु का स्वरूप धारण कर लेती है। जब हम ऋतु का वर्णन करते हैं तो जिससे यह संसार क्रियात्मक हो रहा उसी को ऋतु कहा जाता है और दूसरा शब्द सत्यता में परिणत होता है।

देखो हमारे यहां तीन प्रकार के सत्य का विवेचन आता है एक तो अभावमय सत्य है, एक सत्य सत्य है, एक ब्रह्म सत्य है। एक तो वह जो प्रकृति हमें प्रतीत हो रही है वह सत्य है परन्तु इसका अभाव भी होता है परन्तु इतना नहीं होता; यह सदैव सत्य रहती है। परन्तु एक अभावमय सत्य है जैसे एक मेरे प्यारे ऋषि महानन्द जो दृष्टिपात आ रहे हैं परन्तु कुछ

समय के पश्चात जब यह परमाणु रूप हो जाता है तो उसी सत्य का अभाव हो जाता है। एक माता का पुत्र हमें प्रतीत होता है; शिष्य गुरु को प्रतीत हो रहा है, शिष्य के नेत्रों के समीप गुरुजन हैं परन्तु गुरुजनों का अभाव है क्योंकि उसका जो स्थूल शरीर है वह नहीं रहेगा वह परमाणुवाद बन जायेगा इसलिये वह स्वरूप जो हमें प्रतीत हो रहा था वह सत् था परन्तु सत् के आंगन में सत्यमयी अभाव प्रतीत होता है। एक ब्रह्म सदैव सत्य रहता है। उसका किसी भी काल में अभाव नहीं होता।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम अपने प्यारे प्रभु का गुण गान गाते चले जायें, जिसका किसी काल में भी अभाव नहीं होता। आज जब हम मानवत्व के सम्बन्ध में जब यह उच्चारण करने लगते हैं कि वास्तव में मानव का जीवन क्या है तो उसमें एक महानता प्रतीत होने लगती है। यहां एक मेरी प्यारी माता अपने प्यारे पुत्र के लिये व्याकुल हो रही है परन्तु जब मैं यह प्रश्न करता हूं कि हे माता! यह तेरा पुत्र जिसके लिए तू व्याकुल हो रही है यह पुत्र तेरा कहां था, यह कहां चला गया तो माता से कोई उत्तर नहीं प्राप्त होता क्योंकि वह मोह में परिपक्व है, मोह में इतनी लिप्त हो चुकी है कि वह अपनेपन को समाप्त कर चुकी है। परन्तु हे माता! तेरा जो पुत्र था वह कहां चला गया? उत्तर मिलता है कि उसका मुझे प्रतीत नहीं। हे माता! मैं यह जानना चाहता हूं कि तेरे जो पुत्र का निर्माण है वह किस वस्तु से हुआ है? तो उत्तर मिलता है कि माता के गर्भस्थल में सूक्ष्म से बिन्दु से इसका निर्माण होता है। जैसे पिप्पलाद ऋषि से उनकी पत्नी ने कहा था कि प्रभु! हमारा जो यह मानव शरीर है इसका किस वस्तु

से निर्माण होता है ? तो ऋषि से उत्तर मिलता है कि इस मानव जीवन का जो निर्माण है वह सूक्ष्म से बिन्दु से होता है। मानो जब हमारा यह शरीर इस रूप मे नहीं था तो माता के गर्भस्थल में विराजमान थे। माता के गर्भस्थल में पनप रहे थे। देवो ने कहा कि प्रभु! जब हमारा यह मानव शरीर माता के गर्भस्थल में नहीं था तो उससे पूर्व यह परमाणु देखो माता पिता के रज वीर्य के रूप में विराजमान थे। उन्होंने कहा हे भगवन्! मैं यह जानना चाहती हूं जब माता पिता के शरीरों में रज-वीर्य भी नहीं थे तो उससे पूर्व यह परमाणु कहां रहते थे? उन्होंने कहा यह परमाणु कुछ अन्न में थे, कुछ नाना प्रकार की वनस्पतियों में थे उन्होंने कहा कि हे भगवन्! मैं यह जानना चाहती हूं कि जब यह अन्न और वनस्पतियां भी नहीं थीं तो उससे पूर्व यह परमाणु कहां रहते थे? उन्होंने कहा कि यह परमाणु कृषक की भूमि में ललाहित हो रहे थे। उन्होंने कहा कि हे भगवन्! जब यह कृषक की भूमि भी नहीं थी उससे पूर्व यह परमाणु कहां रहते थे? उन्होंने कहा कि यही परमाणु पृथ्वी में बिखरे हुए परमाणु थे। उन्होंने कहा भगवन्! क्या यह पृथ्वी के ही परमाणु है? उन्होंने कहा कि कदापि नहीं, मानो कुछ अन्तरिक्ष के परमाणु हैं, कुछ जल के परमाणु हैं, कुछ वायु के परमाणु हैं और कुछ अग्नि के परमाणु और कुछ पृथ्वी के परमाणु। यह पंच महाभूतों का पिण्ड माना गया है और इन परमाणुओं को सुगठित करने वाला इस शरीर में जीवात्मा रहता है। जीवात्मा इन परमाणुओं को सुगठित करने वाला है। जब इस शरीर से यह जीवात्मा चला जाता है उस समय यह परमाणुओं का पिण्ड रह जाता है परन्तु क्रिया

से शून्य रह जाता है। इसी को अग्नि के मुखारविन्द में अर्पित कर दिया जाता है। अग्नि के परमाणु अग्नि में चले जाते हैं, जल के परमाणु जल में चले जाते हैं; वायु के परमाणु वायु में चले गये, अन्तरिक्ष के परमाणु अन्तरिक्ष में चले गये, और पृथ्वी के परमाणु पृथ्वी में रमण कर गये। देखो संसार में कोई वस्तु नष्ट होती हो नहीं। परन्तु स्थूलता का जो दृष्टि पात आ रहा था उसका अभाव हो जाता है।

तो तीन प्रकार के सत्यों में यह मानव शरीर भी सत्य है परन्तु इसको सत्यता में भी अभाव रहता है। इसका परमाणु रूप हो जाता है। स्थूलता में प्रतीत होता है तो इसका अभाव प्रतीत नहीं होता। इसलिए वेद के शिष्यों ने कहा है, आचार्य जनों ने कहा है कि यह जो प्रकृति है यह भी सत् है। इसका रूपान्तर होता रहता है। आज यह स्थूल रूप में है परन्तु प्रलय काल आता है तो यह सूक्ष्म रूप में परिणत हो जाती है। यह ब्रह्म के गर्भ में चली जाती है। एक ब्रह्म है जो सदैव चैतन्य क्रियाशील ज्ञान स्वरूप रहता है। उस ब्रह्म का किसो काल में भी अभाव नहीं होता।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज वाक्य उच्चारण करते करते कितनी दूरी चला गया हूं। हम ऋत की व्याख्या करते जा रहे थे। ऋत नाम ब्रह्म को कहा गया है। ब्रह्म नाम चैतन्य शक्ति को कहा गया है क्योंकि उसी के आश्रित हम सब जकड़े रहते है, उसी में कटिवद्ध रहते हैं इसीलिए वेद के ऋषियों ने कहा है कि हम सदैव ब्रह्म के आंगन में ऋत और सत् में रमण करते रहते हैं। ऋत क्या है? आज हमें ऋत को जानना है। शिष्य और गुरु जब दोनों विराजमान होते हैं तो ऋत और सत् का

विवेचना करते रहते हैं मानो वह अपने जीवन की प्रतिभा को जानते रहते है। दोनों तपे हुए होते हैं।

हमारे यहां परम्परागतों में यह माना गया है कि प्रथम हमारे यहां गुरु और शिष्य दोनों को तपस्वी बनाने के लिए आज्ञा दी जा रही है। हे गुरुओ! तुम्हें वास्तव में मनोवैज्ञानिक बनना है। तुम्हें ऐसा मनोंका विज्ञान अपने समीप लाना है जिस से तुम ब्रह्मचारी को अच्छा चुन सको क्योंकि ब्रह्मचारी का चुनना ही होता है। अधिकार अनधिकार को विचार विनिमय करना होता है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय कहा था कि संसार में जब से अधिकार अनाधिकार चेष्टा चली गई है तभी से यहां संसार में बुद्धिमानों का अभाव होता चला जा रहा है। क्यों होता चला जा रहा है? क्योंकि अधिकार अनधिकार को नहीं विचारा जा रहा है, उस पर विवेचना नहीं किया जाता। यदि विवेचन किया जाता तो यह संसार इतना गढ़ले में नहीं जाता, इसमें सुन्दरवाद होता। उच्चारण करने का अभिप्राय है कि हे गुरुजनो! तुम्हें उत्तम बनना है, तपना है और तपने के पश्चात् ब्रह्मचारी को तपाना है और उस शिक्षा संस्कृति को अपनाता है जिस संस्कृति में ऋषित्व हो, जिस में विडम्बना नहीं, विवेक होना चाहिए। उसमें अशुद्धवाद नहीं होना चाहिए।

मेरे प्यारे ऋषिवर! जब अपभ्रंश शब्द हो जाते हैं तो बुद्धिमानों का कर्तव्य है कि उन शब्दों का शोधन कर लेना चाहिए। राष्ट्र की अनुमति लेकर के उनका संशोधन करना यह हम सभी बुद्धिमानों का कर्तव्यवाद कहलाता है क्योंकि शिक्षार्थी और गुरुजन वही होते हैं जिनका दोनों में परस्पर प्रीति और स्नेह और एक दूसरे के कर्तव्य का पालन उनमें

विशेषकर होता है। तपे हुए होते हैं तो जब उनके विचारों में तप का विवेचन होता है, तप की भावना होती हैं तो शिक्षा-लयों में एक महानता की ज्योति प्रदीप्त हो जाती है, चरित्र-वाद की प्रतिभा होती है, द्वेष की मात्रा नहीं होती वहां सदैव आस्था वाला जो जो ऋत है उसका ओत प्रोत होता रहता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा यह वाक्य क्या कहता चला जा रहा है? मैं कोई अधिक वाक्य उच्चारण करने नहीं आया हूं। केवल यह वाक्य उच्चारण करने के लिए आ पहुचे हैं कि हमारा जीवन वास्तव में तपना चाहिये। बेटा! जब यह संसार तपता है तो तपने के पश्चात्यं ही संसार में कोई वस्तु आती है। बेटा! जब पृथ्वी माता ग्रीष्म ऋतु में तपा करती है तो तपने के पश्चात् इसमें जीवन की परिक्रिया आती है जीवन प्राप्त होता है। जब ऋतुमें मेघों से वृष्टि होती है उस समय नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता है। यहीं तक नहीं यह खनिज पदार्थ भी इसी तपने से प्राप्त होते हैं। जहां यह पृथ्वी अधिक तप जाती है वहां सूय से उन किरणों की प्रतिमा इसमें आना प्रारम्भ हो जाती है कि नाना प्रकारकी धातुओं का जन्म होता है। इस पृथ्वी में कितनी विभाजन क्रिया प्रतीत हो रही है। एक सूक्ष्म से स्थान पर नाना प्रकार की वनस्पतियां होती हैं उनके नाना प्रकार के स्वादन होते हैं। उसमें विभाजन क्रिया है, उसमें मनसत्व है, मनसत्व जो पृथ्वी में विराजमान है उसी से रसों का विभाजन होता रहता है प्राण की सत्ता से। पृथ्वी के परमाणुओं में, पृथ्वी के कणों में नाना प्रकार का रस स्वादन होता है। जिस पृथ्वी में कसैला, कसैले में कड़वापन होता है, कड़ापन में धिवा मधुर होता है वहां जानो स्वर्ण जैसी धातु का जन्म होगा।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! ! वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हमें यह जानना है यह विचारना है कि यह पृथ्वी जब तपा करती है तो नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थों का इसी से जन्म होता है और इसी से हमारा जीवन महान बना करता है। आज हमें विज्ञान के क्षेत्रों में जाकर के विचारना है, तप के क्षेत्र में विचारना है कि यह जो प्रभु मनसत्व इसको विचारना है। यह सब ऋत का ही दर्शन है, इन सब में ऋत रमण करता रहता है।

आओ मेरे प्यारे ऋषिवर ! सूर्य की नाना किरणें तपा करती हैं: समुद्रको तपाती हैं। समुद्रसे जलोंका उत्थान होताहै, जल से मेघ बनते हैं, मेघों से उत्तम वर्षा होती है उससे समुद्रों में महानता की ज्योति जाग्रत हो जाती है। उसी से जीवन उन्नत बना करता है। उसी से मानव जीवन में रस आता है, आनन्दत्व आता है। तो हमें विचारना है कि सर्वस्व वस्तु तपा करती हैं।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! मानव मानव का जीवन तप में होना चाहिए। मेरी प्यारी माता जब विचारों से तपती है तो कणाद और गौतम को जन्म देती है मुझे स्मरण है बेटा ! जब महर्षि अगस्त्य मुनि का जन्म हुआ। माता सुमेनलता के गर्भ में महर्षि अगस्त्य मुनि जी थे। उस समय माता तपा करती थी विचारों में तपा करती थी, विवेक में तपा करती थी। उस माता के गर्भ से अगस्त्य जैसा महान विभूतिका जन्म हुआ। तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! संसार में प्रत्येक वस्तु तप चाहती है। तपना चाहिए। शिक्षालयों में जब ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्य से तपते हैं-तपने का अभिप्राय क्या है ? ब्रह्मचारी कौन होता है ? जो बेटा ! ब्रह्म विद्या में चरता है। ब्रह्म विद्या को चरने वाला जैसे

पशु पृथ्वी में से नाना प्रकार की वनस्पतियों को चरता है इस प्रकार जब ब्रह्मचारी ब्रह्म विद्या को चरता है और ब्रह्मचर्यत्व उसमें हमीप होता है तो उसका जीवन महानता में तपा हुआ होता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है कि तपना चाहिए। तप उसे कहते हैं जहां मान अपमान नही होता, जहां गुरु की शरण में रहा जाता है और गुरु कैसा तपा हुआ कि गुरु उसे अपने गर्भ में धारण कर लेता है। जब गुरु अपने आंगन में धारण कर लेता है, उसको शिक्षार्थी बना लेता है, और कहता है चक्षुमय अनुसन्धाधी, प्राणाम् मम अनुसन्धानी, श्रोत्रम् मय अमुसन्धामी। हे बालक! हे ब्रह्मचारी तू मुझे अपनी इन्द्रियों को अर्पित कर। आज मैं तेरे चक्षुओं को सुन्दर बना रहा हूं, इनका शोधन कर रहा हूं। आचार्य सब से प्रथम यह उपदेश देता है कि हे ब्रह्मचारी! अब तू गुरु के आंगन में आ गया है अब तू इन्द्रियों को तपा। इन्द्रियों को तपाना है ज्ञान से, विवेक से, मानो इसमें विडम्बना नहीं आनी चाहिए, इनमें तप होना चाहिए।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है कि संसार में तप होना चाहिए। हमारे यहां तप नहीं होगा तो जीवन में कोई सार्थकता नहीं होगी। तो आओ हम सर्व इन्द्रियों का शोधन गुरु की शरण में करना चाहते हैं परन्तु गुरु इतना बुद्धिमान् होना चाहिए, उसका स्वयं का

जीवन तपा होना चाहिए। यदि गुरु का जीवन तपा हुआ नहीं होगा तो वह ब्रह्मचारी को भी नहीं तपा सकेगा। तपा वही सकता है जिसका स्वयं का जीवन तपा हुआ होगा, विचारों में तपा हुआ, ब्रह्मज्ञान में तपा हुआ, मानो सांसारिक व्यापार में तपा, राष्ट्र विधान में तपा हुआ हो, वही ब्रह्मचारी को तपा सकता है और उज्ज्वल बना सकता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा यह वाक्य क्या कहा रहा है। हमें वास्तव में अपने जीवन को उन्नत बनाना है, पवित्र बनाना है। हमारे यहां आचार्यों के यहां अधिक विद्या की आवश्यकता नहीं है। संसार में जो ज्ञान है, विवेक है बहुत सूक्ष्म सा है, वह नाना प्रकार की पोथियों में नहीं है, वह मानव के विचारों में विराजमान रहता है। मानव की प्रतिभा में विराजमान रहता है। हमें यह विचारना है कि हमें अपनी प्रतिभा को ऊंचा बनाना है, महानता की ज्योति को ऊंचा बनाना है जिससे हम प्रभु की उस महानता को, उस विचारमयी जीवन को विचार सकें जिस महानता से प्रभु ने इस जगत् और ब्रह्माण्ड की रचना की है यह जो जगत् हमें प्रतीत हो रहा है इसकी रचना में क्या क्या तत्व हैं इन सबको विचारना हमारा कर्तव्यवाद कहलाया गया है और उस कर्तव्य-वाद में धर्म परिणत रहता है इसी में धर्म की प्रतिभा होती है जब जिज्ञासुओं ने कहा था कि प्रभु! क्या ऋत इसी को कहते हैं तो ऋषि ने कहा था कि "ऋतचम् ब्रह्मे प्रभा कृति" मानो

देखो जिस शक्ति से तुम क्रिया करते हो, तपते हो, इस तपने का नाम ही मानो ऋत कहलाया जाता है। ब्रह्म ज्ञान में जो तप लेता है; ब्रह्मचर्य में जो तप लेता है ब्रह्म में जो विचरण कर लेता है। बेटा! उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि रसों की रक्षा करना ही ब्रह्मचर्य नहीं कहलाया जाता है ब्रह्मचारी वह होता है जो ब्रह्म का चिन्तन करता है, ब्रह्म के ऊपर विचार विनिमय करता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह कि हम ब्रह्म को याचना करते हुए सदैव अपने मानवत्व को जानते हुए ब्रह्म में विचरण कराते हुए और अपने मानवत्व को जानते हुये कि हमारा मानवत्व है क्या? मेरी प्यारी माता कितनी व्याकुल हो रही है एक पुत्र के बिछड़ जाने के पश्चात् परन्तु हे माता! यह तेरा पुत्र है क्या जब यह कोई वस्तु नष्ट होती नहीं तो अज्ञान में क्यों व्याकुल हो रही है? यह सब अज्ञान है। इसीलिए कहा है कि तपना चाहिए। हे माता! तू अपने विचारों को तपा। हे मानव! तू अपने विचारों को तपा, व्याकुल न हो क्योंकि संसार में किसी वस्तु का अभाव नहीं होता परन्तु उसका रूपान्तर होता रहता है। उस रूपान्तर में अभाव स्वीकार कर लेते हैं परन्तु यदि गम्भीरता से विवेक से विचार विनिमय किया जाता है तो मृत्यु जो शब्द है वह अज्ञानता का प्रतीक माना गया है। आज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम प्रभु की याचना करते हुए, उस महादेव

की याचना करते हुये अपने मानत्व को उन्नत बनाते चले जायें, प्रभु के जगत्त में आये हैं, माता वसुन्धरा के गर्भ में हैं, हम वास्तव में उस माता को याचना करते हुए उसको बारम्बार नमस्कार कर रहे हैं और नमस्कार करके अपने वाक्यों को समाप्त करने जा रहे हैं।

धन्य हो प्रभु।

तो मुनिवरो! आजका यह वाक्य समाप्त होने गया। कल मुझे समय मिलेगा तो अधिकार अनाधिकार के ऊपर विचार विनिमय किया जायेगा। यह पूर्व काल में भी मैंने विचार दिये हैं कल भी मुझे सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। तो यह बेटा! आज का वाक्य समाप्त। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चा कल प्रकट करेंगे।

गुरुदेव! वाक्य तो बहुत सुन्दर परन्तु समय बड़ा सूक्ष्म!

(हास्य के साथ) चलो बेटा। कल समय मिलेगा तो अधिक चर्चायें कल प्रकट करेंगे।

संस्कार

[दिनांक १६-४-६९ को २१ '१२९ न्यू
डबल स्टोरी लाजपत नगर में
दिया हुया प्रवचन]

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज पूर्व से हमने जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां नित्य प्रति कुछ मनोहर वेदों का प्रसारण होता रहता है जिसका कार्य महान् और पवित्र कहा गया है। आज हम इस महान् पवित्र वेदवाणी का प्रसारण करते हुये हमारा वाक्य उस परम पिता की महती महामना महिमा का उच्चारण करता चला जा रहा था जिसकी महिमा हमें लोक लोकान्तरों में दृष्टिपात आती है, जिसका महान् प्रकाश इस संसार को क्रियाशील बना रहा है, जिसकी महानता अनुपम मानी गई है। आज हम अपने उस प्रभु का गुण गान गाते चले जायें। हे परमात्मन्! तू महान् है अनन्तत्व में विराजमान है, तू अनन्त है; तेरी कोई सीमा नहीं है। हे प्रभु! आपके समक्ष सभी बालिकाएँ हैं, एक बालक जन्म लेता है और बृद्धपन को प्राप्त हो जाता है। मानो वृद्धपन उसकी अवधि का है जैसे कृषि करने वाले वैश्य को कृषि वसन्त ऋतु में परिपक्व हो जाती है तो प्रभु! ऐसी ही आपके लिये वसन्त ऋतु वह है जब मानव वृद्धपन को प्राप्त हो जाता है और वृद्धपान में वह आपको ही प्राप्त होता चला

जाता है, उसका जो चित्त है वह एक महानता में परिणत रहता है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! मेरे प्यारे महानन्द जो मुझे एक अद्वितीय प्रेरणा देते चले जा रहे हैं। आज जब हम यह विचार करने लगते हैं कि हमारा यह जीवन कितना अद्वितीय है, कितना महान् है और महानता में सदैव परिणत रहता है। जब यह वाक्य और भो गम्भीरता में परिणत किया जाता है तो हमें ऐसा प्रतीत होने लगता है कि उस परम पिता परमात्मा की महती, अनुपम कृपा में हम सदैव रमण करते चले जा रहे हैं। मेरे प्यारे महानन्द जी कहा करते हैं कि मानव का संस्कार क्या है? संकारों के ऊपर, चित्त के मन्त्रों का प्रतिपादन आता चला जा रहा था। चित्तम् व्रवहा, चित्तम् रुद्रा, चित्तम् मानव चत्तं प्रमाण: चित्तयम्। मानो यह जो चित्त है इसमें मानव के जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान होते रहते हैं। यह संस्कारों का मूल क्षेत्र कहलाया गया हैं। हमें तो बेटा! अनुभव में भी आता रहता है कि वास्तव में मानव के लाखों वर्षों के संस्कार भी कभी न कभी आने प्रारम्भ हो जाते हैं।

इसी प्रकार मुनिवरो! जब माता के गर्भ में प्यारा पुत्र होता है तो उस समय माता पिता दोनों ही सस्कार की पवित्र बेदी पर आते हैं। संस्कार उसे कहते हैं जहां से वस्तुओं का मिलान होता है। दो वस्तुओं का मिलान माता के गर्भस्थल में ही ओत प्रोत हो जाता है। जब वही बालक बन करके माता के गर्भ से पृथक होता है, उन परमाणुओं को एकत्रित करने वाला मेरा प्यारा प्रभु है। जैसे चित्त के संस्कार होते हैं और माता पिता की भावना होती है,

माता-पिता का जितना शुद्ध कर्म होता है उन्हीं भावनाओं को ले करके प्रभु बालक की सुन्दर रचना कर देता है। माता के गर्भ स्थल में जो रचयिता रचता है वह सुन्दर रूपों से रचा करता है। मेरे प्यारे ऋषिवर ! जो चित्त का संस्कार है और माता की जो सुन्दर भावना हैं उन भावनाओं को ले करके प्रभु इस मानव का निर्माण किया करता है और वह जो निर्माण है वह अद्वितीय है, महान् है और पवित्र है परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनमें अनन्तता विराजमान है। मानव के शरीर में भी अनन्ता विराजमान है जैसे ब्रह्माण्ड में तुम्हें अनन्ता प्रतीत होती है। मुनिवरो देखो ! प्रत्येक मानव संस्कार से ही प्राप्त होता है। जब मानव का कोई संस्कार नहीं होगा तो मानव का मिलन होने का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है। आज कोई मानव यह कहता है कि यह जो शरीर है यह छिन्न-भिन्न होने के पश्चात् इसका कोई जन्म नहीं होता। मानो देखो शरीर आत्मा का जन्म नहीं परन्तु केवल रूपान्तर होता रहता है भोगों को भोगने के लिये क्योंकि भोगों के आधीन ही मानव की स्वकीय क्रिया विराजमान रहती हैं। इसीलिये आवागमन किसका है ? आत्मा न कहीं आता है न कहीं जाता है परन्तु उसका आवागमन इसलिये उच्चारण कर देते हैं क्योंकि वह आवागमन आंगन में माता के गर्भस्थल आना है। आने के नाते उसमें पूर्व-वत् संस्कारः विशेषाः देखो साधारणतया किसी ने क्लिष्ट नाना प्रकार के संस्कारों को कटिवद्धता ले करके उसी प्रकार के माता पिता उसका संस्कार अग्रित किया करते हैं।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! यदि संसार में किसी चित्त में संस्कार नहीं होगा तो यहां जन्म लेने का कोई कारण बनता

हो नहीं क्योंकि कारण तभी बना करता है जब कोई संस्कार होता है, कोई न कोई उसकी प्रतिभा संसार में शेष रह जाती है और उन्हीं संस्कारों से मानव का जन्म होता है क्योंकि परम पिता परमात्मा चित्त से रहित है इसीलिये परमात्मा का जन्म नहीं होता जहां चित्त होता है वहीं जन्म होता है और वहां चित्त भी नष्ट हो जाता है वहां मुक्ति का वाक्य माना जाता है। आज कोई मानव यह प्रश्न करने लगता है कि जब मुक्ति में चित्त नहीं रहता, मानो कोई भी संस्कार नहीं रहता तो मुक्ति से संसार में आने का कोई कारण बनता है अथवा नहीं? इसमें कुछ ऐसा कहा गया है कि यह जो आत्मा है इसमें अल्पज्ञता होने के नाते, परमात्मा में सामान्य होने के कारण इसमें कुछ न कुछ अंकुर रूपों से कोई न कोई संसार ऐसा सूक्ष्म रहता है जिसकी कोई अवधि होती है। आज इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना देने नहीं आया हूं। केवल यह उच्चारण करने आ पहुंचा हूं कि संस्कार अवश्य होने चाहिये।

संस्कार कहते किसे हैं? संस्कारों की प्रतिभा क्या है? संस्कार कहते हैं जो मानव चित्त में अंकुर विराजमान हो जाते हैं बीजों को संस्कार कहा जाता है। माता के गर्भस्थल से जब बालक का जन्म होता है तो उस बालक को पिता अपने भुजाओं से अमृतत्व का पान कराता है, शहद इत्यादियों का पान कराता रहता है और वह कहता कि हे बालक! तू मेरे गृह में आया है क्यों आया है? गृह में आने का क्या तात्पर्य है? हमारे ऋषि मुनियों ने कहीं कहीं तो इसे आवागमन का ही क्षेत्र कहा है, कहीं कहीं इसे देने लेने का क्षेत्र कहा तो मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा

नहीं प्रकट करुंगा केवल यह कि बालक को जब यह कहा जाता है तो वह बालक कोई वाक्य उच्चारण नहीं करता। उसके पश्चात् बालक का नामकरण संस्कार कर देते हैं, उपनयन संस्कार कर देते हैं, कहीं जन्म संस्कार कर देते हैं, नाना प्रकार के संस्कारों का जन्म होता रहता है। वह संस्कार प्रायः बालक स्वीकार नहीं करता है परन्तु बालक का जो अन्तःकरण है जिसको हम चित कहते हैं उसमें पिता का कहा हुआ रुद्र आदित्य बन करके उसके अन्तःकरण में अंकित हो जाता है। अंकित क्यों हो जाता है? क्योंकि बालक का हृदय निर्मल होता है, स्वच्छ होता है, सात्विक होता है। वह संस्कार इस प्रकार के अंकित होते हैं कि वह बेटा! किसी भी काल में नष्ट नहीं होते। उसके पश्चात् जब बालक का नामकरण संस्कार होता है तो नामकरण के साथ-साथ, नामोच्चारण किया जाता है हे बालक जब तू कोई शब्द उच्चारण नहीं कर रहा है तो मैं तेरे नाम का उच्चारण कर रहा हूं क्योकि तेरी आत्मा का कोई नाम नहीं है, तत्वों का कोई नाम नहीं है जिनसे सुगठित हुआ पिण्ड प्रतीत हो रहा है। जैसे देखो गृह का नाम है, गृह पृथ्वी के परमाणुओं से बना है, अग्नि में उसे तपाया है परन्तु मेरा गृह यह संस्कार उसके मस्तिष्क में लग जाता है क्योंकि उसका परिश्रम और उसके चित्त में जो संस्कार विराजमान हो गये हैं। इसी प्रकार हमारे यहां कुछ ऐसी परम्परा मानी जाती है कि जब माता और पिता नामोच्चारण करते हैं तो उस समय माता पिता दोनों के हृदय की महानता की कोई सीमा नहीं होती। परन्तु मैं यह कहा करता हूं कि ऐसे माता पिता जो अपने बालक को संस्कारो में परिणत कर देते हैं—नामकरण संस्कार है,

यज्ञोपवीत संस्कार है–वेद के पठन पाठन करने का संस्कार है और भी नाना संस्कार होते हैं। हमारे यहां सोलह संस्कार माने गये हैं। उन सोलह संस्कार में क्या-क्या परिक्रिया हैं यह सूक्ष्म रूप से मैं अभी कुछ परिणत किये देता हूं।

देखो जिस समय माता-पिता गर्भस्थान में विराजमान हो करके अपने अग्रितिः मानो यज्ञ वेदी में पवित्रता से जैसा ऋषि मुनियों ने परिणत किया है जब पुरुष अग्नि बन करके प्रदीप्त होता है तो वह जो अग्नि का पुरुष है वही पुरुष उस वेदी में प्रविष्ट हो करके वेदी उसे भस्म कर देती है। भस्म करके उन परमाणुओं को शुष्क बनाया जाता है। माता के गर्भाशय में उन्हीं परमाणुओं से सुगठितता आ जाती है, पवित्रता आ जाती है। उस माता को जितना भी शीतल पदार्थ होगा, जितनी भी शीतल औषधियां होगी उनका पान करना चाहिये क्योंकि वह जो अग्नि है जो प्रदीप्त हो गई थी उस अग्नि का प्रभाव इतना न रहे कि उत्तेजिक हो करके ग्रस्त न हो जाये। तो वहां शीतल औषधियों को पान करने को कहा है जैसे ब्रह्मण्डी है, जैसे शंकला है, आगुरुणी है यह नाना प्रकार की औषधियों का पान किया जाता है। जैसे चित्र खण्डा है मानो चित्ररेखा है नाना प्रकार की वनस्पतियां होती हैं इनका पान करना माता के लिये बहुत अनिवार्य होता है क्योंकि माता को बालक को जन्म देना है केवल माता तू आनन्द के लिये यहां संसार में नहीं आती, अपनी वेदी से तुझे अग्नि को और पुरुष को उत्पन्न करना है क्योंकि यह प्रभु की सुन्दर रचना है। जब प्रभु ने यह संसार रचा था. जब मानव की रचना हो गई थी उसके पश्चात् जब अग्नि आ गई, पुरुष रचा गया क्योंकि यह जो पंच महाभूतों का रस है वह पृथ्वी

है, पृथ्वी का जो रस है वह वनस्पतियां हैं और वनस्पतियों का जो रस है वह नाना प्रकार के पुष्प हैं और नाना प्रकार के पुष्पों का जो रस है वह फल है और फलों का जो रस है वह पुरुष माना गया है और पुरुष का जो रस है वह वीर्य माना गया है।

मुनिवरो! देखो यह तो सुन्दरम् ब्रह्म अपप्रतिः यह सभी संकुचित भाव में परिणत कर दिया है। जब यह वीर्य उत्पन्न हो गया तो उसके पश्चात् प्रभु ने एक सुन्दर वेदी बनाई जिस को माता के मन्ता के अग्रितियों में स्वीकार किया गया है; वही वेदी है जिसके गर्भ से हम जैसे प्यारे पुत्रों का जन्म होता है। यह सुन्दर वेदी है, इसको और कोई नाम उच्चारण करना यह केवल विह ग्रिति माना गया है। मैं इस वाक्य को और गम्भीरता में नहीं ले जाना चाहता परन्तु वह जो वेदी है उस को विचारना है, उसके ऊपर अनुसन्धान करना है, व्यापकता परिणत करना है जैसे यज्ञ वेदी में नाना प्रकार के सुगन्धिदायक पदार्थों को अग्नि पान करने के पश्चात् सूक्ष्म बना देती है और वह वायु मण्डल में परिणत कर देती है जिससे वायु मण्डल बन जाता है। इसी प्रकार इस वेदी में जितने माता पिता, यजमान के सुन्दर विचार होंगे उतना ही वेदी का भाव पवित्र होगा और पवित्र होने के नाते आगे चलकर के वेद के ऋषियों ने कहा है, आचार्य जनों ने कहा है कि 'गिरि प्रताम् मना कृति अभ्ये अस्ति सुत्रा नभ्या नम् ब्रह्म अप्रतिः" कि वह यज्ञ वेदी में जब बालक प्रविष्ट होता है तो शीतल औषधियों का पान करना चाहिए।

उसके पश्चात् मुनिवरो! जब तीन मास का गर्भाशय हो जाये तो माता पिता को संयम और नियम संकलन धारण कर

लेना चाहिये। उस सभय पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह सेल खंडा, चित्रलता; आम्याणी, संकला इन चारों औषधियों को ला करके इनको माता को पान करा देना चाहिये क्योंकि यह चारों औषधियां बुद्धिवधक होती हैं, वीर्य वर्धक होती हैं माता के गर्भस्थल में बालक सुन्दर पनपने लगता हे। आगे चल करके जब वही बालक पांच माह का होता है, छठे माह में एक और संस्कार होता है जिसको सुरी दण्डक नाम का संस्कार भी कहते है तो उस समय पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह अपनी पत्नी को सुन्दर सुन्दर औषधियों का पान कराये जिसमें चित्ररेखा, ब्रह्मदण्डी, मानधुनी, अन्नवाती और सहदेंइ इन चारो औषधियों का पान करा देना चाहिये क्योंकि यह बुद्धिवधक हैं, कामधेनु हैं और यह ओज को प्रबल बनाने बाली हैं और हृदय को उज्ज्वल बनाने वाली हैं।

मुनिवरो जब नवां माह प्रारम्भ हो जाये उस समय सहदेई सानखण्डा, आनवादरी इत्यादि औषधियों का पान कराकर के माता को उज्ज्वल बनाया जाये तो माता के गर्भ से बिना बिघ्न बाधाओं के बालक पृथक हो जाये जैसे एक बेल से फल परिपक्व हो जाने के पश्चात् स्वतः हो पृथक हो जाता है। बेल को कोई कष्ट नहीं होता और फल पृथक हो जाता है इसी प्रकार हमें यह विचार विनिमय करना है। जब बालक का जन्म हो उस समय माता पिता का कर्त्तव्य हे कि सोने की सलाखा ले करके, सोना नहीं हो तो उससे उत्तम जो धातु हो मानो रत्न इत्यदि धातु हो उसको जल में आवृत नरें और जल में मन्थन करके के पश्चात् मधु हो और मधु के साथ में सहदेई हो और सूक्ष्म सा प्राग्नि हो ओर इन चारों का एक हि स्थान में मन्थन करने के पश्चात् बालक को प्रारम्भ में

अर्पित कर देनी चाहिये जिससे उसके कंठ में कोई भी किसी प्रकार की विरागनी हो आधागंना हो वह सब दूर हो जाये और बालक की जो नाभि है उसमें किसी प्रकार की कष्टता न रह जाये।

बेटा! यह विज्ञान तो बहुत प्रबल है मैं इन वाक्यों का कहां तक प्रतिपादन करता रहूंगा केवल वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि माता पिता का बहुत कर्त्तव्य होता है। मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहा करते हैं कि आधुनिक काल के जो माता पिता हैं वह तो इसको जानते ही नहीं परन्तु मैंने तभी यह भी कहा है कि गृहस्थ के अधिकारी संसार के सब प्राणी नहीं होते कुछ ही प्राणी हुआ करते हैं जो उत्तम से उत्तम सन्तानों को जन्म देते हैं। सन्तानों का उत्तम हो जाना बहुत अनिवार्य है। मुनिवरो! जब यहां नक्षत्रों का ज्ञान होता है यहां ऐसा भी कहा गया है कि जब चित्रा और पूषा नक्षत्र दोनों का मिलान होता है और उस समय माता के गर्भ में गर्भस्थापना हो जाती है तो उस माता के गर्भस्थल से अधिराज का जन्म होता है। इसी प्रकार जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों अपनी परिधि में हो और पृथ्वी इनके मध्य में हो, पृथ्वी का ग्रहण हो और उनके ऊपर पूषा नक्षत्र की छाया हो और उस काल में माता के गर्भस्थल की स्थापना हो जाये तो महान् बुद्धिमान वेदों का प्रकाण्ड पण्डित उत्पन्न हुआ करता है। जब ग्रहण हो तृती हो और जब रोही, राहु आदि का वायु में प्रभाव हो और पृथ्वी में दोष हों और उस काल का जब माता के गर्भ स्थल से जन्म होता है हे माता! वह वास्तव में तेरा पुत्र कामी बनता चला जाता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं इस वाक्य को अधिक गम्भीरता

में सूक्ष्म नहीं बनाना चाहता। मेरे प्यारे महानन्द जी ने जैसा कहा है मैं उसके अनुसार कुछ वाक्य प्रारम्भ करने लगा। यहां यह वाक्य प्रारम्भ होता चला जा रहा था कि माता पिता को बहुत कुछ अपना कार्य करना है, कर्त्तव्य से विहीन नहीं होना है। कर्त्तव्य में संलग्न होना है जिससे हम राष्ट्र और समाज मानवत्व को उत्तम बनाते चले जायें। इसके पश्चात् आगे चल करके बालक का नामकरण और चूड़ा संस्कार करना चाहिये। मैंने नामकरण की परिभाषा और उसका किरत किया है कि वह नमोउच्चारण करे। नाम उच्चारण करके बालक के मुख में कुछ स्वर्ण का आवरणों से मन्थन करके मधु और परागनी इत्यादियों का मिश्रण करके बालक के मुख में अर्पित करे और मन्त्रों का उच्चारण करे "सौमावृति अन्नमा प्राति आपुशमनाः प्रथे अस्तम् पदार्थानि रुद्रो भाक्षणी रुद्रो महा चाणम् अव्रेति पावकचाम् मम्र अस्ति सुप्रजाः" माता और पुरोहित दोनों इस मन्त्र का उच्चारण करें और उच्चारण करके उस बालक के कंठ में औषधियों का प्रभाव करें। जैसे औषधियां मधु हैं, सुन्दर हैं शूक्ष्मत्व हैं इसी प्रकार बालक हृदय सूक्ष्मत्व और विचारवान् होना चाहिये इसका भाव हमारे यहां यह माना गया है।

इसके पश्चात् जब बालक का मुण्डन संस्कार होता है क्योंकि वह जो केश हैं उनमें नाना प्रकार के दोष होते हैं उन दोषों को दूर करने के लिये मुण्डन संस्कार का विधान हमारे ऋषि मुनियों ने कहा है। उस मुण्डन संस्कार में यह है कि "औषमूव्रह्म" सुन्दर जल और यहि नदियों का जल हो बहुत ही सुन्दर हो। जल को ले करके उस जल में सेददही, ब्रह्मदण्डो, मामबागनो काश्नो और गिलोय का रस उसमें परिणत करें

और उससे जो तीक्ष्ग विरिधी है उसको उसमें ही विरिधी करें और बालक के जो केश हैं उनको उसी से धोने का हमारे यहां विधान है। उसके पश्चात् जो वह तीक्ष्ण अस्त्र है उसको उन औषधियों में विरिधी किया जाये और उसके पश्चात् बालक का मुण्डन संस्कार होना चाहिए। मुण्डन के पश्चात् पुरोहित और माता पिता मन्त्रों का पठन पाठन करते रहते हैं क्योंकि जहां से वह केश अर्पित हुए हैं उसके स्थान में सुन्दर भावना बन जाये। यह जो मस्तिष्क है इस मस्तिष्क से ही मानव का द्वितीय जन्म हुआ करता है। मस्तिष्क ही सुन्दर होना चाहिए क्योंकि मस्तिष्क में ही ब्रह्मरन्ध्र होता है और मस्तिष्क में ही लाखों ऐसी नाड़ियां होती हैं जिनका सम्बन्ध लोक लोकान्तरों से हुआ करता है। इसलिए कहा गया है कि यह जो एक एक केश है इसके निचले विभाग में लगभग १०१ नाड़ियों का प्रभाव रमण करता रहता है। इसीलिए इन औष- धियों का प्रभाव होना चाहिए जिससे वह जो नाड़ियां हैं उनमें यह औषधियां विद्युत का कार्य करे। औषधियों में गति प्रबल हो जाये। ब्रह्मरन्ध्र में गति प्रबल हो जाये। ऐसा हमारे वेद का भाव है। जितनी ब्रह्मरन्ध्र में, नाड़ियों में गति होगी उतनी ही बुद्धि तीक्ष्ण होगी और बुद्धि में महा- नत्ता होगी, उद्यानत्ता होगी, ऐसा हमारे यहां आया है।

वाक्यों को उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हमारे यहां संस्कार ही होता है। यदि संस्कार नहीं होगा तो मानव का जन्म ही नहीं होगा। ऋषि मुनियों ने कहा है कि जितना मानव का आत्मा संस्कारों से रहित हो जाता है उतना उसके जन्म में सूक्ष्मता हो जाती है और जितने संस्कार क्लिष्ट होते हैं अशुद्ध होते हैं, उतना ही मरण और जीना मानव की आत्मा

के लिए स्वतः लगा रहता है।

अब कष्ट में आया अभी कष्ट से चला गया; अभी शरीर धारण किया और अभी मृत्यु को प्राप्त हो गया। तो मुनिवरो ! जो माता पिता शोधन करने वाले होते हैं, पवित्र अग्नि और वेदी बन करके पुत्र की स्थापना करते हैं। उसको बेटा ! ससार में किसी प्रकार का शोक नहीं होता क्यों हमारे यहां सतोयुग काल ऐसा कहा जाता है कि पिता और माता से पूर्व पुत्र नष्ट नहीं होता था क्योंकि शोधन था, विचारधारा थी, विचारों की सुगठितता थी। इसलिए हमारे यहां जीवात्मा को कर्म करने में स्वतन्त्र माना गया है इसमें परतन्त्रता नहीं आती परन्तु कहीं कहीं परतन्त्रता भी स्वीकार करते हैं। परन्तु जहां यह प्रश्न आता है कि कर्म कितना हो किया जा सकता है, कितना हो स्थूल किया जा सकता है कितना ही व्यापक किया जा सकता है, कितनी महानता वाला किया जा सकता है। उसी से जीवन में एक महानता की एक अद्भुतता उत्पन्न होने लगती है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! हमारे यहां उसके पश्चात् जब मुण्डन संस्कार में वह औषधियों का रस आवृत कर दें और उन केशों को पृथ्वी में दग्ध कर देना चाहिए जिससे वह जो विष है वह परमाणुओं में अधिक मिश्रण न हो। उसके पश्चात् माता पिता और पुरोहितजन और भी जो महान् व्यक्ति होते हैं उन सभी को सेहदई और सेलखण्ड़ा और गिलोय इन तीनों का रस लेकर के इसमें मधु को प्रविष्ट करके बालक को पान करा देना चाहिए और कुछ उसके सिर पर मन्थन कर देना चाहिए जिससे वह और भी गति शील हो जाय। उसके पश्चात् उसको

शुद्ध पवित्र जल में स्नान करा कर के उस बालक को सुन्दर २ पदार्थों का पान करा देना चाहिए।

यह है बेटा! हमारा यह वाक्य जो मैंने दर्शनों के सिद्धान्तों से कुछ अपने वाक्यों को प्रकट किया है। हमारे यहां ऋषि मुनियों को यही परम्परागत मानी गई है। मुझे स्मरण आता रहता है यहां नाना संस्कारों का जन्म होता है। बेटा! एक नहीं। यज्ञोपवीत संस्कार होता है। उसमें "यज्ञो पवित्रम् ब्रह्म" मानो तीनों प्रकार के ऋणों का अर्पित किया जाता है। मैं आज सोलह संस्कारों का प्रतिपादन नहीं कर रहा हूं। महानन्द जी! कोई काल आयेगा तो मैं इसे भी उच्चारण कर सकूंगा। आज के तुम्हारे इन प्रश्नों का उत्तर देता चला जा रहा हूं कि हमारे यहां गृह आश्रम में बहुत सूक्ष्मता होती है। इसमें केवल आनन्द के लिए गृह आश्रम नहीं होता है। गृह आश्रम होता है कर्त्तव्यता को पालन करने के लिए, प्रभु के ब्रह्माण्ड को जो प्रभु ने रचना की है उस ऋण से अनऋण होने के लिए हम सब जगत में आये हैं। महापुरुषों को ऋषि मुनियों को गृह में प्रविष्टता में और उनको उपदेश देना ऋषि मुनियों और महापुरुषों का कर्त्तव्य हो जाता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया इस सम्बन्ध में। केवल अपने सूक्ष्म से विचार प्रकट करने आया हूं कि हमारा जीवन हमारी महानता उस परमात्मा से सुगठित रहती है इसीलिए हमें परम पिता परमात्मा को अपने मध्य में परिणत कर देना चाहिए। मानव को पापाचारों में रमण नहीं करना चाहिए, अश्लीलता में रमण नहीं करना चाहिए। हमारे यहां जितना भी वाद है कर्त्तव्यवाद में माना हैं। जितने वाक्य आज मैंने प्रकट किए हैं यह कर्त्तव्य

वाद को पवित्र वेदी में स्वीकार किए गये हैं हमारे यहां ऋषि मुनियों ने एक वाक्य और कहा है कि पुत्र उत्पन्न करने से पूर्व मानव को विचारशील हो जाना चाहिए कि माता पिता को उससे पूर्व देखो एक शंख रेखा औषधि होती है और प्रतिभा होती है और ब्रह्मदण्डी तीनों का मिलान किया जाता है और उसे पान किया जाता है जिसको आधाम् ब्रह्मे चित्रांगनी भी कहते हैं। इन औषधियों का पान करा करके दुग्ध के साथ में लगभग एक वर्ष तक ब्रह्मचारी रहे और उसके पश्चात् पुत्र की स्थापना करें। ऐसा हमारे यहां परम्परागतों से माना है, ऋषि मुनियों का यह सिद्धान्त है।

बेटा! मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूं। इस सम्बन्ध में मुझे अधिक वाक्य नहीं प्रकट करने हैं केवल यह है कि जो माता पिता चाहते हैं कि हम सन्तान को महान् और पवित्र बनाना चाहते हैं तो उनका संस्कार करो क्योंकि संस्कार चित्त में होते हैं, संस्कारों की जो प्रतिभा है वही तो मानव को उत्तम बनाती है। बेटा देखो एक बालक का नामकरण संस्कार कर देते हैं उस बालक को जब नामोउच्चारण कर देते हैं तो वह बड़ा प्रसन्न होता है कि मुझे ही सम्बोधित हो रहा है। बेटा! सम्बोधित उसी को किया जाता है ऐसा हमारे यहां विचार धाराओं में स्वीकार किया गया है। तो आज का यह वाक्य मैं समाप्त करने जा रहा हूं। आज के इन वाक्यों का अभिप्राय है कि हमें उस परमपिता परमात्मा की उपासना करनी चाहिए। हे परमात्मन्! माता पिता सुन्दर होने चाहिए। तेरे राष्ट्र में तेरी महानता का वर्णन करते हुये तेरा नियुक्त किया हुआ जो

सिद्धान्त है, विचारधारा है, ज्ञानमय ज्योति है उसको रमण करते चले जायें। उसी में अपने विचारों को और अपने कर्त्तव्य कटिवद्ध करते हुये मान अपमान को त्याग करके इस संसार सागर से पार होने का प्रयत्न करें। हे प्रभु! तेरा जो आदित्य सिद्धान्त है, तेरी जो आदित्यमय विचारधारा है उसको लेकर के प्राणियों का मस्तिष्क उत्तम होना चाहिए। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चायें किसी काल में प्रकट की जा सकेंगी।

धन्य हो भगवन्। गुरुदेव। वाक्य तो बहुत ही सुन्दर परन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इन विचारों के तो संसार में बहुत ही सूक्ष्म व्यक्ति हैं।

(हास्य के साथ) बेटा! प्रतीत नहीं ऐसा।

भगवन्! ऐसा ही प्रतीत होता है आपके इन वचनों से अच्छा भगवन्! आपका समय तो बहुत ही सुक्ष्म रहा।

बेटा! कल अधिक समय उच्चारण किया जा सकेगा।

अच्छा भगवन्!

तो मुनिवरो! आज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह है कि संस्कार होने चाहिएं, पुरोहित उत्तम हों। संस्कारों से ही मनुष्य संसार में आता है। अशुभ शुभ किसो भो प्रकार के संस्कार हो। इसलिए प्राणियों को संस्कार करने चाहिए और बालक को सुन्दर २ आयुष्मान, आयुर्विद हो, सहस्रों वर्षों की अवस्था हो ऐसा सुन्दर आशीर्वाद पुरोहित और जो महान् व्यक्ति हैं देना चाहिए जिस समय बालक का अन्तःकरण

उसके चित्त पर उनकी आयु की एक शृंखला बन जाये, एक रेखा बन जाये। ऐसा सुन्दर आशीर्वाद दे करके मानो देखो आकृति पूर्ण अग्रितिः यज्ञम् ब्रह्मा देवांतम् देवालयोः देवताओं से भी ऐसी कामना करे, वेद मन्त्रों में भी ऐसी कामना करे। तो आजका यह वाक्य समाप्त होने जा रहा है। अब वेदों का पाठ होगा।

भगवान कृष्ण

(दिनांक ३-९-६९ को सेठ महावीर प्रसाद जी की कोठी सी-३/९ मोडल टाउन, दिल्ली में दिया हुआ प्रवचन।

जीते रहो !

देखो मुनिवरो आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां जो पठन-पाठन का सुन्दर कर्म है वह परम्परागतों से और उसी पद्धति से सुगठित है जिस पद्धति के आधार पर मानव के जीवन में एक अलौकिक-वाद उत्पन्न होने लगता है। हमारे यहां समय समय पर महा· पुरुषों का आगमन होता रहा है और उन महापुरुषों के आग· मन में एक विचित्रवाद छाता चला आया है। परम्परा से वैदिक परम्परा को उन्नत बनाने के लिए वह मानव का परम धर्म हो जाता है क्योंकि मानव की जो मीमांसा है वह मनन· शील के आधार पर निर्धारित है क्योंकि मानव वही कहलाता है जो मननशील होता है, जिसके मन का कोई संक लन होता है, उसी के जीवन में महानता की एक ज्योति प्रकट रहती है तो तेरे प्यारे ऋषिवर ! जब हम प्रत्येक वाक्य को अपनाने का अथवा मनन करने का साधन बनायेंगे तो हमारा जीवन वास्तव में एक ज्योतिमय प्रतीत होने लगेगा।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आओ आज हम महापुरुषों की चर्चा करने जा रहे थे। आज मुझे वह प्रातः स्मरणीय, वह

समाज स्मरण आ रहा है जिस समाज में मानो देखो 'गऊ अप्रभे अस्तम् मधु केत्वा हृदयस्तम् ब्रह्मे' जहां प्राणीमात्र की रक्षा करने वाले महापुरुष जब उत्पन्न हो जाते हैं तो प्रत्येक प्राणीमात्र की रक्षा में एक उज्ज्वलवाद छाता चला जाता है जिस उज्ज्वलता की ज्योति को अपनाते हुए हमारी मानवता उसी के आधार पर एक अस्तखम के तुल्य स्थिर हो जाती है। आओ आज विवेचना करते जायें कि हमारे यहां समय समय पर ऐसे सुन्दर महापुरुषों का आगमन होता रहा है। परम्परागत उनका जीवन किस प्रकार का रहा है जिनकी विवेचना मैंने बहुत पूर्व काल में भी की है आज भी मुझे स्मरण आता चला जा रहा है। आज मुझे वह प्रातः स्मरणीय भगवान कृष्ण का जीवन स्मरण आता चला जा रहा है। भगवान कृष्ण के जीवन में सदैव अग्नि प्रदीप्त रहती थी। उनके पठन-पाटन का जो कर्म था, मनन करने की जो पद्धतियां थीं वह विचित्रता में सदैव परिणत रही हैं, उन पद्धतियों को अपनाने के लिये आज हम लालायित रहते हैं कि आज पुनः से उन पद्धतियों को अपनाया जाय। उन पद्धतियों के आधार पर ज्ञान और विज्ञान को पुनः विवेचनायें की जायें और उस विज्ञान को पुनः से लाना चाहिए जिस विज्ञान को जान करके भगवान कृष्ण का पाठ्य क्रम सदैव विचित्रता में परिणित रहा है।

मुनिवरो ! भगवान कृष्ण ने एक वाक्य कहा था जिस समय कुरुक्षेत्र में कौरव पांडव दोनों की सेनाओं के मध्य में विराजमान थे, अर्जुन सखा उनके सहित थे। महाराजा अर्जुन दोनों पक्षों को दृष्टिपात करके शोकातुर हो गये जब शोक में लवलीन हो गये तो उस समय भगवान

कृष्ण ने कहा था कि हे अर्जुन। यह मोह तुम्हें इस प्रकार का क्यों आया है? देखो कर्त्तव्यवाद को जो मानव मोह के वशीभूत हो करके त्याग देता है उस मानव का यह लोक और परलोक दोनों ही नहीं रहा करते इसलिए आज तुम शोकातुर न हो। आज तुम अपने कर्त्तव्य और क्षत्रियपन को न त्यागो।

जब अर्जुन ने यह कहा कि महाराज! आपने जो यह कहा कि "सूर्या अंग्रते अबभ्रा कृतिः" कि सूर्य को मैंने ज्ञान दिया और अक्षवा को दिया तो प्रभु! सूर्य तो परम्परागतों का है और अक्षवा को बहुत समय हुआ और आपका जन्म तो हमें अभी प्रतीत होता है। उस समय भगवान कृष्ण ने एक ही वाक्य कहा था कि हे अर्जुन! मैं उन जन्मों को जानता हूं परन्तु तू नहीं जानता। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! हमें उस मानवता को अपनाना है जिसके हम जानने वाले बनें। क्या जानने वाले बनें? अपने जन्म जन्मान्तरों की प्रतिभा को जानने वाले बने और उस प्रतीभा को जान करके संसार सागर से पार होने का प्रयास करें।

आज हम विचार विनिमय करते चले जायें कि भगवान कृष्ण का जीवन किस प्रकार का था। मानो जिस समय उन्होंने अक्षवा को ज्ञान दिया, महाराजा सूर्य को उन्होंने ज्ञान दिया तो उस समय भगवान कृष्ण कौन थे? यह विचारना है। महाराजा सूर्य को वैदिक ज्ञान का और विज्ञान का प्रसारण कराने वाला कौन है? मेरे प्यारे ऋषिवर! ऐसा कहा जाता है कि यहि भगवान कृष्ण का आत्मा ही मनु जी का आत्मा था। मानो देखो कृष्ण का आत्मा मनु जी के शरीर में प्रविष्ट हो रहा था उस काल में। भगवान मनु को पद्धतियों में प्रायः आता रहता है कि उनके जीवन में एक अग्नि की प्रतिभा

ओत प्रोत रही। भगवान मनु ने सबसे प्रथम राष्ट्रीय विज्ञान को बनाया और विधान बनाते हुए उन्होंने कहा है कि धर्म और मानवता की रक्षा करना राष्ट्र का परम उद्देश्य है क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में और धर्म और मानवता की रक्षा नहीं होती है उस राष्ट्र और पद्धति को कदापि भी नहीं चुनना चाहिए। इसी आत्मा का सर्व प्रथम जन्म महाराजा मनु का हुआ। उसके पश्चात् उन्होंने महाराजा सूर्य और अक्षवा को ज्ञान दिया क्योंकि भगवान् मनु के पुत्र का नाम सूर्य था। सूर्य नाम का रूत्र राजा था। उसके पश्चात् उनके पुत्र का नाम अक्षवा था। उन्हीं को उन्होंने यह ज्ञान की विचारधाराएं और राष्ट्रीय पद्धति का वर्णन कराया और ब्रह्म ज्ञान दे करके वह अपने परम धाम को प्राप्त हो गये थे।

इसी प्रकार जब आज हम यह विचारने लगते हैं कि भगवान मनु के पश्चात् और भी नाना जन्म हुए जिनकी मीमांसा से मुझे लाभ नहीं है जो उन जन्मों को उच्चारण करने लगूं, मैंने केवल प्रारम्भ के जन्म की विवेचना की है। आज मैं भगवान कृष्णा के जीवन और उस कर्त्तव्यवाद पर जा रहा हूं। वास्तव में इसमें जाने में मुझे कोई लाभ प्राप्त नहीं होता है। आज मैं उनके जीवन को प्रतिभाओं को अथवा उनकी आकृतियों को वर्णन करता रहूं तो इससे मुझे लाभ नहीं परन्तु विचार विनिमय यह करना है कि भगवान कृष्ण के जीवन ने सदैव समय समय पर आ करके किस प्रकार की मानव पद्धति को अपनाने का प्रयास किया, मानो वैदिक परम्परा को अपनाते हुएं भगवान् कृष्ण ने एक वाक्य कहा था कि जहां समाज में गऊओं की रक्षा होती है, गौ नाम के पशु की रक्षा करनी है, गौ नाम इन्द्रियों की रक्षा करनी है, वहां

राष्ट्रीय विचारधारा और मानव पद्धति को विलक्षण बनाना है। बेटा! मुझे स्मरण आता है जब भगवान कृष्ण मार्ग से आते तो वह एक ध्वनि किया करते थे और उसी ध्वनि के आधार पर मानो एक नाद होता और गउएं प्रसन्न हो करके दूध देने के लिए तत्पर हो जाती। वह गउएं जब तत्पर हो जाती तो उस समय उनके दूग्ध को पान किया जाता था। जब पशु प्रसन्न हो करके दूग्ध को देता है तो वह स्वामी के लिए बुद्धि वर्धक होता है। आज कोई मानव पशु के दुग्ध को लेना चाहता है परन्तु उसके हृदय में यह वेदना नहीं है कि मैं इसको दुग्ध प्रदान कर सकूं तो आचार्य कहते हैं, भगवान कृष्ण ने भी कहा है कि वह दुग्ध रक्त के तुल्य हो होता है, वह दुग्ध मानव के मस्तिष्क को कदापि भी उन्नत नहीं बना सकेगा क्योंकि मानव के मस्तिष्क का तो प्रसन्नता से जन्म होता है। मानव के मस्तिष्क का जो जन्म है वह उसकी प्रसन्नता से ही सुगठित रहता है। तो भगवान कृष्ण ने कहा है कि सबसे प्रथम पशु को प्रसन्न किया जाये। देखो वह उनकी रक्षा करने में कितने दक्ष रहते थे। मुझे स्मरण है मार्ग में जाते रहते, वेदों का अध्ययन प्रारम्भ रहता, गऊओं की रक्षा होती रहती, दोनों प्रकार की गऊओं की रक्षा करना उनका परम कर्त्तव्य था। सबसे प्रथम गऊ नाम के पशु की, क्योंकि उससे राष्ट्रीय परम्परा ऊंची बनती है। राष्ट्रीय सम्पदा क्या है? जो देखो राष्ट्र में दुग्ध देने वाला पशु है, उसी से मानव की बुद्धि ऊंची बनती है, मानव की बुद्धि में ऊर्ध्व गति आती है। ऐसे उत्तम पशु राजा के राष्ट्र में और उनकी रक्षा करना यह सब का परम कर्त्तव्य हो जाता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! भगवान कृष्ण का जीवन कितना

महान गोपनीय और विचित्रता में सदैव परिणित रहा है। परन्तु उन्होंने नाना वार्त्तायें प्रकट करते हुए कहा है कि प्र हम वास्तव में इस आत्मा तत्व को जानने का प्रयास करें जिस आत्म तत्व को जान करके ही हम संसार रूपी सागर से पार हो जाते हैं। तो मुनिवरो देखो! भगवान कृष्ण वेदों का पठन पाठन करते रहते। उनकी पत्नी उनसे निवेदन करती रहती कि महाराज! आप भोजन भी नहीं पान करते हो; सदैव ऐसे गोपनीय विषय में संलग्न हो जाते हो कि आपको संसार का ज्ञान नहीं रह पाता। भगवान कृष्ण ने कहा कि देवी! मैं क्या करूं यह जो वेदों का ज्ञान है यह ऐसा गोपनीय विषय है कि मेरा हृदय प्रसन्न होता है और इसे त्यागने के लिए मेरी इच्छा नहीं होती कि आज मैं इस वैदिक परम्परा को त्याग दूं अथवा यह गोपनीय विषय मेरे हृदय से दूर चला जाये। मुनिवरो देखो! पति और पत्नी दोनों एकान्त स्थान में विराजमान होते, वेदों की चर्चा प्रारम्भ होती रहती विचार विनिमय चलता रहता और उनका हृदय मग्न रहता कि आज वैदिक विचार धाराओं की छत्र छाया में हमारा जीवन परिपक्व रहता है।

तो मुनिवरो देखो! जहां भगवान कृष्ण का जीवन गऊओं की रक्षा करने में, वेद की परम्परा को ऊंचा बनाने में था वहां वह भौतिक विज्ञान में कितने पारंगत थे। भौतिक विज्ञान में उनकी कितनी विलक्षण गति थी। मुझे स्मरण है मैंने महाभारत काल का अच्छी प्रकार अध्ययन करने के पश्चात् देखा कि उनके द्वारा कितना विज्ञान था। उन्होंने वेदों से ही नाना प्रकार के यन्त्रों का अविष्कार किया था। भगवान कृष्ण मौनधुक नाम की रेखा को जानते थे और उन्होंने एक

सुधा तुक नाम का यन्त्र बनाया था जिस यन्त्र में उनको विशेषताएं थीं। क्या विशेषता थी ? प्रायः महाभारत में आता है, श्रवण भी किया गया है कि जब महाराजा जयद्रथ को नष्ट करने का प्रश्न आया तो उस समय महाराज अर्जुन ने एक प्रतीज्ञा की थी कि सूर्य अस्त होने से पूर्व अपने प्राणों को त्याग दूंगा यदि जयद्रथ का वध न कर पाया परन्तु दिवस आया और गुरु द्रोणाचाय, दुर्योधन इत्यादियों ने जयद्रथ को अपने ही आंगन में ऐसे स्थान में रखा जहां अर्जुन को दृष्टिपात ही नहीं आ पाता था। परन्तु भगवान कृष्ण ने यह विचारा कि अब क्या होना चाहिए। यदि सूर्य अस्त हो गया और जयद्रथ के दर्शन न हुए तो मेरा जो सखा अर्जुन है यह प्राणों को अवश्य त्याग देगा। तो उन्होंने जो मौनधुक नाम का यन्त्र था उसको अन्तरिक्ष में छा दिया। जब अन्तरिक्ष में छा दिया तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि सूर्य अस्त हो गया है, अन्धकार छा गया है। मुनिवरो देखो ! उस समय जयद्रथ इत्यादि सब आ पहुंचे कि अब अर्जुन के प्राणों को नष्ट होते दृष्टिपात करेंगे। जब वह सब महाराजा अर्जुन के निकट विराजमान हो गये अब भगवान कृष्ण ने सोमधुक नाम के यन्त्र का अपरित किया तो उस दूसरे यन्त्र का प्रभाव समाप्त हो गया और सूर्य उदय हो गया और अर्जुन स कहा कि हे अर्जुन ! तू कहां है, देखो यह सूर्य उदय हो रहा है, तू क्यों नहीं इसे छेदन कर देता, देख जयद्रथ तेरे सन्मुख है। मुनिवरो देखो ! उस काल में कितना विलक्षण विज्ञान था। अर्जुन से कहा था कि हे अर्जुन किसी प्रकार की विडम्बना न कर देना। यदि इसका मस्तक नीचे गिर गया तेरा मस्तक भी नीचे गिर जायेगा इसी लिये यह मस्तक ऐसे

स्थान में जाना चाहिए। कहा जाता है कि अपरे ि जयद्रथ के पिता गंगा के किनारे तप कर रहे थे उस समय जयद्रथ का मस्तक तरकसों पर विराजमान होता हुआ पिता को गोद में पहुंचा और उन्होंने विचारा कि यह क्या है, ज्यों हो मस्तक नोचे गया पिता का मस्तक भो नोचे आ गया उस यन्त्र से। उसो यन्त्र का प्रभाव था कि पिता और पुत्र दोनों का हो वध हो गया। विचार विनिमय में यह है कि आज हमें यह विचार विनिमय करना है कि भगवान कृष्ण का विज्ञान कितना पारंगत था।

मुनिवरो! जहां उनमें इस प्रकार को विज्ञान धारा थी वहां उनके मन में यह विडम्बना रहती थी कि मुझे आध्यात्मिक-वाद का अध्ययन करना चाहिए। जहां सदैव उनका जीवन इस प्रकार का रहता था कि यन्त्रों में हो संलग्न रहते थे, एक जो मानधुक नाम की रेखा थी जिसको सौनधिक नाम की रेखा भी कहते थे, जिसका वेदों में बड़ा सुन्दर वर्णन आता है, उन्होंने अध्ययन किया। अध्ययन करने के पश्चात् यह जो यज्ञ वेदी है, इसका जो परमाणुवाद है जब अन्तरिक्ष में जाता है तो उसो परमाणुवाद से उन्होंने इस यन्त्र को जाना इस रेखा को जाना था। महाभारत का जब संग्राम हुआ तो भगवान कृष्ण यह जानते थे कि यदि मैंने दूसरी कृति को नहीं जाना तो यह समाज नष्ट भ्रष्ट हो जायेगा।

ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने जितना महाभारत संग्राम का क्षेत्र था उसके ि कट उस रेखा को स्थिर कर दिया था। उस रेखा का परिणाम यह था, उस रेखा को जो वैज्ञानिकता थी वह इस प्रकार की थी कि जितना भी परमाणुवाद, जितना यन्त्रों से सग्राम होता रहा उन यन्त्रों के जितने अन्तर्गत रहते

थे उनकी मृत्यु हो जाती थी भगवान कृष्ण ने उस रेखा को अच्छी प्रकार सुगठित कर दिया था। उसका प्रभाव यह भी था कि देखो चार-चार पांच-पांच योजना के ऊपरले मार्ग में जा करके वह परमाणु पहुंचते थे परन्तु उससे ऊपर कोई परमाणु न जावे जिससे दुसरे व्यक्ति उस महान् ऐसे विषैले यन्त्रों से नष्ट भ्रष्ट हो जावे भगवान कृष्ण के समीप ऐसा विज्ञान रहता था। परन्तु जहां वैदिक परम्परा को इस प्रकार अपनाने में सदैव तत्पर रहते थे वहां उनका जीवन इस प्रकार का रहता था कि उनके जीवन में सदैव अग्नि की प्रतिमा रहती थी। उस अग्नि को धारण करते हुए भगवान कृष्ण ने ज्ञान और विज्ञान को जानने का प्रयास किया।

भगवान कृष्ण यह भी जानते थे कि मैं मंगल की यात्रा कर सकता हूं। मंगल की यात्रा करने के लिये उन्होंने सौकिक आज के एक मन्त्र को निर्धारित किया था जिस मन्त्र में विराजमान होकर के उन्होंने ऐसे महान् सूक्ष्म परमाणुओं को जानने का प्रयास किया था जो पंचम नाम का जैसे परमाणु, महापरमाणु, त्रिसेणु, चतुंसेणु पचसेनु, अकरेती और सातवां जो सेणु होता है उसको जान करके देखो सातवां सेणु होता है वह इतना सूक्ष्म और शक्तिशाली होता है कि वह मंगल में यात्रा करने में सफल हो जाता है। मुनिवरो! भगवान कृष्ण मन्त्रों में विराजमान होते और वह लोकों की यात्रा कर लेते थे परन्तु आत्मा रूपी यन्त्र को बना करके लोक लोकान्तरों को क्या परमात्मा के सर्वस ब्रह्माण्ड में भ्रमण कर लेते थे। उनका जीवन ऐसा माना है मैं तो यह कहा करता हू कि उन्होंने अपने जीवन भर में एक भी पाप कर्म नहीं किया था। इस प्रकार का महान व्यक्ति था। आज तो मैं प्रभु से यह कहा

करता हूं कि हे प्रभु ! जैसा मेरे प्यारे महानन्द जी ने आधुनिक काल के कुछ राष्ट्रों को और प्रजा को विडम्बना प्रगट की है तो मैं तो प्रभु से यह कहा करता हूं कि भगवान कृष्ण जैसी पुनीत आत्मा आयें और अद्भुत आत्मायें संसार में होनी चाहिए जिससे यह समाज और राष्ट्र उन्नतिशील होता चला जाये और मानव समाज का कल्याण हो जाये। मानव पुनः से ज्ञान और विज्ञान की वेदी पर आ जाये और जब प्रत्येक मानव को प्रत्येक देव कन्या को ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा आ जाती है वहां पाप कर्म भी नहीं होता और जहां पाप कर्म नहीं होता विचारधारायें व्यापक होती हैं और जहां व्यापक विचारधारायें होती हैं वहां मानव हर प्रकार से सुखद होने का प्रयास करता रहता है। इसी प्रकार आज हमें वास्तव में यह जानना है कि यह भगवान कृष्ण जी का जीवन किस प्रकार का था वास्तव में उस जीवन को लाने का प्रयास करना चाहिए कि उनके जीवन में कितनी सुन्दरता थी।

मुझे स्मरण है कि आज के दिवस पृथ्वी मण्डल पर भगवान कृष्ण के आगमन होने की बड़ी प्रतीक्षा हो रही थी। प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्याओं के हृदय में ऐसी उत्कठ प्रतीक्षा हो रही थी कि ऐसी पुनीत आत्मा आनी चाहिए क्योंकि जितने भी महापुरुष होते हैं उनका जो जन्म होता है, उनकी जो जीवन चर्या होती है वह ऐसे ही आपत्तिकाल में होती है। क्योंकि महान् आत्मा कदापि भी ऊंचे ऊंचे गृहों में जन्म नहीं लेती है जैसे जान्सरुती महाराजा ने कहा था अपने मन्त्री से।

मुझे स्मरण है महाराजा जान्सरुती ने अपने पुरोहित से कहा कि हे पुरोहित ! जाओ किसी ब्रह्मज्ञानी के दर्शन कर

आओ। उस समय पुरोहित जो महाराज राष्ट्र गृहों में भ्रमण करने लगे। पृथ्वी मण्डल के सब राष्ट्रों में भ्रमण करने के पश्चात वह महाराजा के द्वारा आये और उनसे कहा कि महाराज मुझे किसी महापुरुष के दर्शन नहीं हुए। उन्होंने कहा कि अरे तुम कहां गये थे ? उन्होंने कहा कि महाराज मैंने इस पृथ्वी मण्डल के सर्वस राष्ट्रों का भ्रमण किया है परन्तु मुझे किसी ब्रह्मज्ञानी के दर्शन नहीं हुए। उन्होंने कहा कि अरे मन्त्री जी ! क्या तुम राष्ट्र गृहों में; ऊंचे ऊंचे भवनों में ब्रह्मज्ञानी की कामना करते हो। ब्रह्मज्ञानी इन गृहों में नहीं प्राप्त होते हैं। जाओ ब्रह्मज्ञानी और महापुरुष भयंकर बनों में तुम्हें प्राप्त होंगे। तो वह मन्त्री जी जान्सरुती के वाक्यों का पान करके भयंकर बन में जा पहुंचे। भ्रमण करते हुए रेवक ऋषि के द्वार जा पहुंचे। महर्षि रेवक अपना जीवन एक गाड़ी के नीचे व्यतीत कर रहे थे। मन्त्री जी उनके चरणों में ओत प्रोत हो करके बोले भगवन् ! मैं आपके दर्शन करने आया हूं आप कौन हैं ? उन्होंने कहा कि मुझे तो रेवक ही कहते हैं, गाड़ीवान रेवक मेरा नाम है। उस समय मन्त्री जी ने कहा कि क्या भगवन आप ही महर्षि रेवक हैं। ऋषि कहते हैं कि मुझे ऋषि तो नहीं कहते परन्तु रेवक अवश्य कहते है। ऋषियों का हृदय तो इतना उदार और पवित्र होता है कि वह अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं किया करते हैं। तो रेवक मुनि के दर्शनों को पान करने के पश्चात् वह भ्रमण करते हुये जान्सश्रुति के द्वारा पहुंचे। महाराजा जान्सश्रुति से कहा कि महाराज ! देखो ब्रह्म प्रति गाड़ीवान रेवक के मैंने दर्शन किए हैं और उनके दर्शनों को करके आ रहा हूं। उनके दर्शन अमृत के तुल्य हैं। जान्सश्रुति ने कहा कि बहुत सुन्दर।

मन्त्री जी तो अपने राष्ट्र का कार्य करने लगे। बहुत सी मुद्रा के सहित महाराजा जान्सश्रुति ने प्रस्थान किया और ऋषि के द्वारा जा पहुंचे और उनके चरणों में नत्मष्तक हो गये। नाना मुद्रायें उन्हें प्राप्त कराईं और कहा कि यह मेरी भेंट स्वीकार कीजिये। रेवक ने कहा कि अरे शूद्र! तुम यह क्या उच्चारण कर रहे हो। उन्होंने कहा कि प्रभु मैं आपके समीप इसलिये आया हूं कि आपका जो इष्ट देव है उसका मुझे ज्ञान कराईये उसके ज्ञान के लिये मैं आपके समीप आया हूं। जब जान्सश्रुति को शुद्र कहा तो उन्होंने विचारा कि यह सूक्ष्म मुद्रायें हैं। तब राजा ने अपनी एक सुन्दर सी पुत्री को लेकर के उसके कंठ में भुजों में सुन्दर सुन्दर आभूषणों से सुशोभित करके अपने गृह से प्रस्थान किया और गाड़ीवान रेवक के द्वारा आये और उनसे कहा कि लीजिये भगवन मुझे इष्ट का ज्ञान कराईये। तब उन्होंने कहा कि तुम शूद्र हो परन्तु तुम चाहते क्या हो। उन्होंने कहा कि प्रभु मैं यह चहाता हूं कि जिस देव की अब तक आपने उपासना की है मैं उस देवता का ज्ञान चहाता हूं, उस उपदेश को मुझे कराईये। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर मैं तुम्हें ज्ञान कराऊंगा परन्तु यह शूद्रपन कहां से आ पहुंचा है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि जितने भी महापुरुषों का जन्म होता है वह ऊंचे भवनों में नहीं होता वह आपत्तिजनक स्थानों में हुआ करता है। भगवान कृष्ण का जो जन्म है वह महाराजा कंस के कारागार में हुआ परन्तु किस प्रकार का कारागागार था उसको बेटा! तुमने दृष्टिपात किया होगा। कारागार में जन्म होने वाले भगवान कृष्ण का जीवन कितना अग्रणी रहा है,

कितना महान् रहा है: कितनी पवित्रता में उनका जीवन सदैव परिणित रहा है। उनके उन्नत जीवन में विशेष चर्चायें तो मैं कल ही प्रगट करूंगा आज तो मुझे केवल यह उच्चारण करना है कि वह ज्ञान विज्ञान में कितना परांगत थे। वेद की परम्परा को ऊंची बनाने में उनका जीवन सदैव संलग्न रहता था। गोपनीय विषयों को सदैव विचार विनिमय करते रहते थे।

उनके जीवन में ऐसा भी आता है कि एक समय वह सौमतिती नाम की जो रेखा है उसको जानने में वह लगभग देखो दस दिवस हो गये और अन्न भी प्राप्त नहीं होता था। उसके अनुसन्धान में संलग्न रहते थे। उनके जीवन में कोई ऐसा अवसर प्राप्त नहीं हुआ कि जो संसार में आ करके वह किसी प्रकार के पाप कर्म करने में तत्पर हो जायें।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज के हमारे इन वाक्यां का अभिप्राय क्या है कि हमें उन महान पुरुषों की विवेचना और उनकी जो मिमांसा है, उनकी जो विडम्बना है उनको विचारना चाहिये क्योंकि उनको विचार करके ही हमारा जीवन उन्नत बन सकता है अन्यथा हमारे जीवन को उन्नत बनाने के लिये हमें और कोई मार्ग प्राप्त नहीं होता है। हम भगवान कृष्ण के जीवन को विचार विनिमय करते चले जायें। भगवान कृष्ण ने कहा है कि हे अर्जुन तू नहीं जानता और मैं जन्म जन्मान्तरों के बहुत से जन्मों को जानता हूं क्योंकि मेरा जो जन्म है वह यौगिकता से परिणित रहता है मानो वह एक सुन्दरता से सुगठित रहता है इसीलिए हे अर्जुन! आज तुम मुझे जानने का प्रयास करो। यह ज्ञान जो आज मैं तुम्हें अर्पित करा रहा हूं यह ज्ञान और विज्ञान मैंने अक्थवा को और सूर्य को

कराया है। पूर्व भी कराता चला आया हूं इसके पश्चात् भी मैंने कराया है। तो आज हमें उन महापुरुषों की वेदनाओं को विचारना चाहिए और उस वैदिक परम्परा को अपनाना चाहिए जिसमें ज्ञान और विज्ञान है। जैसा मेरे प्यारे महानन्द जी ने कहा कि आज का संसार तो चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है। मैंने यह कहा है बेटा! कि पूर्व काल में तो मंगल बुद्ध इत्यादियों में भ्रमण किया जाता था और समय आता रहता है उसी प्रकार विज्ञान उन्नतिशील होता रहता है ज्ञान भी उन्नतिशील होता रहता है। यह तो परम्परा है यह इसी प्रकार की चलती आई है। मानव को जानकारी की उत्सुकता रहती है, प्रत्येक पदार्थ को जानने के लिए वह सदैव तत्पर रहता है, उसे जानना चाहिए। जानकर अपने जीवन को उन्नत और महान् पवित्रता में परिणित कर देना चाहिए। जिससे वैदिक परम्परा ऊंची बनें और ऊंची बनने के पश्चात् उसका पुनः उत्थान होता रहे और उसमें एक नवीनवाद आता रहे। वेद की परम्पराओं से ही तो नवीनवाद आता है, पवित्र वाद आता है। आज मैं कोई विशेष चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूं। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम महापुरुषों के जीवन को विचारते हुए अपने जीवन को उन्नत बनाते चले जायें। अपने जीवन में उन वाक्यों को निर्धारित करते चले जायें जिन वाक्यों से देखो हमारा जीवन उन्नत होता है, पवित्र होता है। कल मैं भगवान कृष्ण के ज्ञान और विज्ञान की चर्चायें प्रकट करूंगा। भगवान कृष्ण ने यह कहा है कि राजा के राष्ट्र में धर्म और मानवता की रक्षा होनी चाहिए। धर्म और मानवता की रक्षा दोनों एक ही तुल्य होती है क्योंकि हिंसक राष्ट्र नहीं होना चाहिए, दुग्ध देने

वाला जो पशु है वह राजा के राष्ट्र में अधिकतर होना चाहिए। जब अधिक होंगे तो राजा का राष्ट्र उन्नत होगा और उस राज्य के राष्ट्र में बुद्धिमत्ता होगी। यह है आज का हमारा वाक्य।
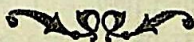
दिनांक ४-९-६९ को कृष्ण जन्माष्टमी के
पर्व पर सेठ महावीर प्रसाद के
यहां माडल टाऊन, दिल्ली में
दिया हुआ प्रवचन

मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज मैं वहीं चला जाऊं जहां मैंने कल के वाक्यों को शान्त किया था। आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा था कि परमात्मा अनन्त है, परमात्मा की उपासना करना और प्रत्येक वस्तु पर चिन्तन करना। जिस मार्ग को भी अपनाना चहाते हो उस पर हमारा चिन्तन होना चाहिए, निद्यासन होना चाहिए। यदि हमारा चिन्तन नहीं होगा तो उस मार्ग में हम असफल होकर के प्रकृति उस आंगन में पहुंच जायेंगे जहां प्रकृति भी हमें एक समय ठुकराती चली जायेगी। यह हमें अपने पगों से दूर करेगी और हम इसके समीप आयेंगे। प्रकृति भी हमारे जीवन की महिमा को त्याग देगी। तो मेरे प्यारे ऋषिवर आज मैं उन महापुरुषों की वेला पर जाना चाहता हूं जिन महापुरुषों ने जीवन को प्रतिभा को जाना है, जो अपने सुख और ऐश्वर्य को त्याग करके इस संसार सागर में आ करके अपनी

विचित्रता का दिग्दर्शन कराते हुये इस संसार से चले गये। बेटा! मैं उन महापुरुषों की चर्चायें प्रकट कर रहा था कल का वाक्य भी हमारा ऐसा ही था। आज भी मैंने एक वाक्य कहा था कि आज हमें उन महापुरुषों के ऊपर विचार विनिमय करना चाहते हैं जिन महापुरुषों ने अपने जीवन को वास्तव में इस संसार में, इस मानव वेला में ज्ञान और विज्ञान में जगत को दिग्दर्शन कराया उन महापुरुषों की चर्चा आज प्रकट करने जा रहे थे।

बेटा! मैंने कल के वाक्यों में कहा था कि भगवान कृष्ण का जन्म ऊंचे २ भवनों में नहीं हुआ, महाराज कंस के कारागार में हुआ। महाराजा कंस उग्रसेन के पुत्र थे। महाराजा कंस के हृदय में अभिमान की मात्रा अधिक थी। अभिमान होने के नाते भगवान कृष्ण के माता पिता देवकी और वसुदेव को अपने कारागार में बन्द कर लिया था क्योंकि उन्होंने एक समय नारद मुनि से कहा था कि महाराज मेरी मृत्यु कैसे होगी। उन्होंने कहा कि तुम्हारी जो बहन है इसी के गर्भ से सातवें स्थान में एक पुत्र का जन्म होगा वह तेरी मृत्यु का कारण बनेगा। उस समय महाराजा कंस ने विचारा कि मैं उस पुत्र को जन्म होते ही नष्ट करूंगा क्योंकि मृत्यु को आने ही नहीं दूंगा जब मेरी मृत्यु उनके भुजों में है। मुनिवरो देखो अभिमान में मनुष्य क्या नहीं करता। अपनी बहन देवकी और वसुदेव दोनों को अपने कारागार में स्थिर कर लिया। मुनिवरो देखो, वह कारागार में रहे। जो भी शिशु गर्भ से उत्पन्न होता उसको कंस अपने सेवकों से नष्ट करा देता। स्वयं भी इसी प्रतिभा का बन गया। मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत हो क्या नहीं कर सकता। मृत्यु के भय से वह सूक्ष्म २ कन्याओं

को नष्ट करने लगा। जब सातवें की आशा कृति हुई तो महा-राजा कंस के अत्याचारों से समाज में एक बड़ी क्रान्ति आई और क्रान्तिवादियों ने यह कहा कि अरे क्या करें यह तो इसने अपने ही सम्बन्धियों को कारागार में स्थिर कर लिया वह हमें क्यों नहीं मृत्यु दण्ड देगा वह परमात्मा से याचना करने लगे कि हे प्रभु! तू इनकी रक्षा कर। सातवां जो जन्म है, उनके गर्भ से उत्पन्न होने वाला शिशु है उसकी रक्षा कर। प्रजा की आत्मा की जो एक ध्वनि थी परमपिता परमात्मा ने वह स्वीकार की और स्वीकार करने का परिणाम यह हुआ कि जिस दिवस उसका जन्म होने वाला था उसी दिन वह जमुना पर स्नान करने जा पहुंचे। अहा! माता देवकी को माता यशोदा के दर्शन हुए और यशोदा से कहा--"भोजक प्रभे अकृतानम् पुत्रो ग्रतानि पुत्र अन्यै कृतानि अस्तिती" उन्होंने कहा कि मैं गर्भवती हूं, मेरे यदि पुत्री होगी तो मैं तुम्हें अर्पित कर सकती हूं और पुत्र को मेरे यहां अर्पित कर देना। दोनों की एक प्रकार की संकलना बन गयी। उन दोनों का संकल्प हो गया।

मुनिवरो! वही रात्रि थी। आज मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे भगवान् कृष्ण का जीवन आज हुआ हो क्योंकि आज वही दिवस है; वही रात्रि है जिस दिवस आज से साढ़े पांच हजार वर्ष से कुछ अधिक हुआ जब भगवान कृष्ण का जन्म हुआ था। तो जब जन्म हुआ तो उस समय कारागार पर जितने भी सेवक थे वह गाढ़ी निद्रा में परिणित हो गये क्योंकि जिसको प्रभु जीवन देता है और जो स्वयं पवित्र आत्मा हो तो उसको कौन नष्ट कर सकता है संसार में। क्या आज कोई मानव प्रयत्नशील रहे कि मैं अमुक व्यक्ति को नष्ट कर सकता

हूं तो कोई कर हो नहीं सकता।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! अब जितने सेवक थे सब विश्राम करने लगे और सब गाढ़ निद्रा में परिणित हो गये। पुत्र का जन्म होते हो वसुदेव अपने बालक को एक सूक्ष्म से पात्र में ले करके उन्हें जमुना को पार करना था। जमुना को पार करते हुए वह यशोदा के द्वारा उस पुत्र को त्याग दिया। उसी रात यशोदा के कन्या का जन्म हुआ। यशोदा ने उसे अपने पति को अर्पित कर दिया। देवकी ने उसे स्वीकार कर लिया। दिवस होते हो कंस ने कहा कि क्या पुत्र है, या पुत्री है। उन्होंने कहा कि महाराज पुत्री है। महाराजा कंस ने उसे भी नष्ट कर दिया। कुछ दिवस हुए कि नारद पुनः आ गये। देव ऋषि नारद ने कहा कहिए भगवन! कंस ने कहा कि महाराज मैंने तो सर्व शिशुओं को नष्ट कर दिया है। तो उन्होने कहा कि तुम्हारी मृत्यु का तो कारण बन गया है। वह तो माता यशोदा के यहां पुत्र चला गया वह नष्ट नहीं हो सकेगा, यह वाक्य कंस ने श्रवण किया परन्तु उन्होंने अपने नाना योधा क्षत्रियों को एकत्रित किया और उनसे कहा कि जाओ उसे नष्ट करो। परन्तु वह कैसे नष्ट हो सकता था। महापुरुषों को महिमा अलौकिक होती है उनका जीवन भी अलौकिक होता है और उनके नेत्रों की और सब इन्द्रियों की प्रतिभा एक अलौकिक होती है। उनकी अलौकिकता को कोई नष्ट नहीं कर सकता।

मेरे प्यारे ऋषिवर! भगवान कृष्ण ने अनेक सेवकों को नष्ट किया परन्तु वह स्वयं ज्यों का त्यों रहा। देखो गृहों में जितना भी दही और घृत था वह महाराजा कंस के यहां जाता था। भगवान कृष्ण ने कहा कि घृत ग्रहों में रहना चाहिए या इसे मुझे पान कराओ। मेरे पान करने का अभिप्राय यह है

कि प्रत्येक गृह में इसका प्रविष्ट होना चाहिए। यह राजा के यहां इस प्रकार का कर नहीं जाना चाहिए। देखो बाल्यकाल में उसकी इतनी तीव्र बुद्धि थी कि वह अपनी तीव्रता से कार्य करते थे। जहां उनका जीवन इतना बलिष्ठ और इतना चातुर्यता में था उतना ही उनका योगिकला में पारंगत था। मुझे स्मरण है कि वह सोलह कलाओं को जानते थे। सोडष कलायें क्या होती हैं मानो वह ज्ञान में पारंगत होता है जो सोडष कलाओं को जानता है। मैंने तुम्हें एकसमय वर्णन कराया था कि यह सोडष कलायें क्या होती हैं। बेटा! सबसे प्रथम कला का नाम देखो प्राचीदिग्, दक्षिण दिग्, प्रतीचोदिग्, उदीचिदिग् चार यह कलायें मानी गई हैं। पृथ्वी कला, वायु कला, अन्तरिक्ष कला और समुद्र कला चार कलायें यह थी और तृतीय स्थान में सूर्य कला, चन्द्रकला, अग्नि कला और विद्युत कला चार कलायें यह थीं जिनको जानने के लिए भगवान कृष्ण सदैव तत्पर रहते थे। जैसे विद्युत है, अग्नि है और अन्तरिक्ष इनमें जितनी प्रतिभा होती हैं उसको जानते थे। उसके पश्चात् मन कला, चक्षु कला, श्रोत कला और घ्राण कला इन सबको वह जानते थे। यह सोडष कलायें कहलाईं जाती हैं जिनको भगवान कृष्ण अच्छी प्रकार जानते थे। इसीलिए योग है उन की इतनी गति थी, और राष्ट्रीय विधान में भी उनकी प्रगति महान विशाल रहती थी। जो सोडष कलाओं को जानने वाला महापुरुष होता है वह इस संसार में महान कहलाया जाता है। आज हमें उन महान विचारों को विलक्षण बनाना है जिस से हमारा जीवन उन्नत बनने के लिए तत्पर होता चला जाये।

मुनिवरो! भगवान कृष्ण इन सोडष कलाओं को जान कर नित्यप्रति साधक के साधक रहते थे और राष्ट्रीय विधान में

भी राष्ट्रीय वेत्ता रहते थे। प्रातःकाल में जब रात्री रहती थी, तारामण्डल अपना प्रकाश लिए हुए होते थे रात्री के गर्भ में उस समय अपने संस्थान को त्याग देना और चिन्तन करना निध्यासन करना मानो योगिक परिक्रियाओं पर विचार विनिमय करना विशालता को विचारना जैसे देखो प्राचीदिग् है, दक्षिण दिग् है, प्रोतीचो दिग् है और उदीची दिग् है इन चारों दिशाओं को वह जानने का प्रयास करते रहते थे, उनमें कितना ब्यापकयाद है, एक दूसरों दिशा में कितनी सुगठितता है जैसे पृथ्वो है इसमें कितना खनिज है, खाद्य है इन सबको विचार विनिमय करना और वायु में कितनी तरंगें हैं कितने वेग से भ्रमण करती हैं, किस किस समय में क्या क्या कार्य करती है यह सब विचार विनिमय करना उनका कार्य था। समुद्र को जानने का प्रयास करते रहते कि समुद्र में कितने प्रकार के प्राणी रहते हैं, किस प्रकार से उत्थान होता है यह सब कुछ जानने का वह प्रयास करते रहते थे। इन बारह कलाओं को जानने के पश्चात् वह जानते थे कि हम इन बारह कलाओं के ऊपर संयमी कैसे बन सकते हैं। उन्होंने अपने विचारों में एक लेखनी वद्ध की थी तो मुझे स्मरण है उन्होंने कहा था यदि हम अपनी चारों कलाओं को अच्छी प्रकार नहीं जानेंगे तब तक इन पर संयम कर नहीं पायेंगे वह चारों कलायें कौनसी हैं ? सबसे प्रथम मन कला, चक्षु कला, श्रोत कला और घ्राण कला- इन चारों कलाओं का ज्ञान होने के पश्चात हम संसार के ब्रह्मवेता, संसार के विज्ञानवेता, भौतिक और आध्यात्मिक दोनों में एक विशालता को प्राप्त हो सकते हैं। इन सब कलाओं को जानने वाला संसार में एक महान योगी कहलाता है किस प्रकार का योगी ? आज कोई यह उच्चारण करने

लगता है कि मैं चन्द्रमा में, मंगल में और बृहस्पति में जाने वाले यन्त्रों का निर्माण करना चहाता हूं तो ऐसे जो महापुरुष सोढ़स कलाओं को जानने वाले होते हैं क्योंकि इन सोढ़स कलाओं में से ही परमाणुओं की उद्‌बुद्धता होती रहती है, परमाणुओं की उद्‌बुद्धता होने के नाते ही भिन्न भिन्न प्रकार के परमाणु उत्पन्न होते रहते हैं, उन परमाणुओं को सुगठित करना यह सब महापुरुषों का कर्तव्य होता है। इन परमाणुओं पर उनका अधिपत्य हो जाता है। अधिपत्य हो जाने के पश्चात वह भौतिकवाद हो चाहे आध्यात्मिकवाद हो उन में अधूरापन किसी काल में भी रह ही नहीं सकता।

तो मुनिवरो! मुझे भगवान कृष्ण का जन्म स्मरण है परन्तु ऐसे महापुरुष का जन्म हुआ कहां? बेटा! कंस के कारागार में। मुनिवरो! जितने भी महापुरुष होते हैं उनका कहीं पर्वतों में जन्म हुआ, कहीं कारागार में हुआ, देखो इसी प्रकार को प्रतिभा प्राप्त होती रहती है। कल के वाक्य में मैंने कहा था कि भगवान कृष्ण ने महाराजा अर्जुन से कहा था कि मैं बहुत से जन्मों को जानता हूं परन्तु तू नहीं जानता है। परन्तु उन्होने देखो वैश्वा वस्वत् जो भगवान् मनु जो हुए हैं वह भगवान् मनु द्वितीय काल में हुए परन्तु उससे पूर्व काल में वह शम्भू मनु महाराज के नाम से हुए। सर्व सृष्टि में बेटा! चौदह मनमन्त्र होते हैं और चौदह मनु होते हैं। एक एक मनु एक एक अकृत्र समय में आता रहता है, देखो चार अरब बतीस करोड़ का कुछ वर्षों की सृष्टि की अवस्था होती है। परन्तु उन अवस्थाओं में चौदह मनु होते हैं, ब्रह्मा की सहस्त्र आयु होती है और चौदह मन मन्त्र होते हैं और प्रत्येक मन-मन्त्र में एक मनु होता है सृष्टि के प्रारम्भ में जो प्रथम मनु

था वह मनु भगवान् कृष्ण के रूपां वृत्ति आस्ति आत्मा ब्रह्म कृत्रि मानो वही आत्मा थी जिन्होंने सूर्य और अक्षवा को ज्ञान दिया क्योंकि सूर्य और अक्क्षवा जो हुए सर्वप्रथम मन-मन्त्र में हुए इसी प्रकार द्वितोय मनु हुए, तृतोय मनु हुए इसो प्रकार अब यह सातवां मनमन्त्र प्रारम्भ हो रहा है। इस समय जो चल रहा है वह सातवां मनमन्त्र चल रहा है। यह भी कुछ काल में समाप्त हो जायेगा और आठवां प्रारम्भ हो जायेगा। इसी प्रकार चौदह मन्त्र होते हैं, प्रत्येक मनमन्त्र में एक मनु होता है। एक मनमन्त्र की आयु घृति मानी गई है मानो जैसे ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है अहोरात्र भी बड़ा विलक्षण माना गया है, ब्रह्मा की एक रात्री एक कल्प के समान होती है, एक कल्प के समान एक दिवस होता है इसी प्रकार ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु होने के पश्चात् यह सृष्टि का प्रारम्भ समाप्त हो जाता है। मैं इस अध्ययन में अधिक नहीं जाना चाहता। वाक्यों का प्रारम्भ यह चल रहा था कि हम यह विचार विनिमय करते चले जायें कि महापुरुषों का जो जन्म है वह ऊंचे ऊंचे भवनों में नहीं होता।

मुनिवरो! भगवान् कृष्ण राष्ट्रीय विचारों में कितने पारंगत थे। यह प्रत्येक मानव को उसका ज्ञान है वह कितना राष्ट्रीय विचारों में मानो विज्ञान में कितने पारंगत थे और कर्म काण्ड में उनकी कितनी रुचि थी वेद के पारंगत पंडित होने के नाते, वेद का ज्ञान होने के नाते महान वेत्ता कहलाये जाते थे। मुझे स्मरण है जब वह गोपनीय विषय को विचार विनिमय करते रहते थे। आज का वह पुनीत सुन्दर दिवस है जब भगवान कृष्ण का इस पृथ्वी मण्डल पर आगमन हुआ था। मेरे प्यारे महानन्द जो यह कहा करते हैं कि क्या यह मुक्त आत्मा थी

अथवा मुक्ति में सूक्ष्मता रह गई थी। तो मैंने इन वाक्यों को पूर्व काल में टिप्पणियां करते हुए प्रकट करते हुए कहा है कि वास्तव में यह मोक्ष आत्मायें संसार में आती हैं और परोपकार करके यहां से चली जाती हैं। वह मानो समाज के लिए और भी कोई कर्म करते वह कर्म उनमें व्याप्ता नहीं है क्योंकि उनका विचार उनकी प्रतिभा साधारण कर्म से उपराम होती हैं इसी लिए मानव को आश्चर्यजनक प्रतीत होता है उनका जीवन। उनके जीवन में यही विशेषता होती है कि वह साधारण से अलौकिक पुरुष कहलाते हैं क्योंकि वह दृष्टिपात करते हुए भी दृष्टिपात नहीं किया करते हैं। वह भोगों को भोगते हुए भी भोग नहीं भोग्य करते हैं क्योंकि महापुरुषों की यह एक विशेषता होती है। समाज के हित के जो कार्य होते हैं उनमें वह दूसरों को मिथ्या प्रतीत होता है परन्तु वह मिथ्या उनको व्याप्ता नहीं है क्योंकि उनका जो जीवन है, उनकी जो अलौकिक विचारधारा है वह अपनी कोई विचारधारा नहीं होती वह जो उनका पूर्व संस्कार संकलन होता है और जो संकलन करके आते हैं उसी संकल्प के आधार से उनके जीवन में एक अलौकिकता होती है इसीलिए उन्हें भगवान इत्यादियों की उपाधियां प्राप्त हो जाती हैं।

भगवान में क्या विशेषता है ? भगवान भी तो इस संसार में कार्य कर रहा है परन्तु प्रकृति उसको व्याप्त नहीं कर सकती। व्याप्य और व्यापक का सम्बन्ध होता है। इसी प्रकार महापुरुषों का और साधारण पुरुषों का भी व्याप्य और व्यापक रूपों से सुगठित सम्बन्ध होता है। आज हम उनके जीवन से शिक्षा पाने का प्रयास करें। वास्तव में ऐसा नहीं कि जहां उन्होंने गऊओं की पशुओं की रक्षा की है आज के मानव को जैसा मेरे

प्यारे महानन्द जी ने मुझे वर्णन कराया है आज का मानव उनको भक्षण कर रहा है; भक्षण नहीं करना चाहिए क्योंकि महापुरुषों से यही शिक्षा प्राप्त होती है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने और भी नाना महापुरुषों की चर्चायें प्रकट की हैं उनका एक मन्तव्य रहता है कि धर्म और मानवता की रक्षा होनी चाहिए, योगिकता की रक्षा होनी चाहिए। सभी महापुरुषों का एक ही मन्तव्य रहता है इनके विचारों में सुगठितवाद रहता है। सुगठितवाद को सदैव विचार विनिमय करना प्रत्येक देव-कन्या का कर्तव्य रहता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा वाक्य क्या कहता चला जा रहा है कि हम भगवान कृष्ण को विचार विनिमय में करें और उनके जीवन से शिक्षा अध्ययन करें। शिक्षा का काम करें। उन्होंने कहा कि मोह ममता में इतना तल्लीन नहीं होना चाहिए। कर्तव्यवाद प्रथम है और मोह ममता उसके पश्चात रहती है। कर्तव्यवाद में अपने जीवन को उन्नत बनाने के लिए मानव को सदैव तत्पर रहना चाहिए। सबसे प्रथम मानव का कर्तव्यवाद होता है उसकी ऊंची प्रतिभा होती है, उस प्रतिभा को विचार विनिमय करना है। हमें वास्तव में महान्ता को अपनाने का प्रयास करना चाहिए जिसको अपनाने से हमारा जीवन, हमारी मानवता ऊंची बनती है। हम वास्तव में महापुरुषों के ऊपर विचार विनिमिय कर सकें।

बेटा! भगवान राम बारह कलाओं के जानने वाले थे। भगवान् कृष्ण सोडश कलाओं को जानने वाले थे। भगवान राम प्रथम चार कलाओं को नहीं जानते थे और भगवान् कृष्ण सोडश कलाओं को जानते थे आगे और भी नाना प्रकार की विंशति कलायें रहती हैं। उनका विवरण किसी अगले काल में

करेंगे। आज तो केवल यह कि हमें उन वाक्यों को विचार विनिमय करना है जिन वाक्यों से हमारा जीवन, हमारा राष्ट्र-वाद, हमारी मानवता ऊंची बनें। ऊंची बनाने का अभि-प्राय है कि जितना भी समाज में, मानववाद में उत्तम से उत्तम विचार होंगे उतना ही पवित्र वातावरण होगा। जितना वाता-वरण पवित्र होगा उतना ही प्रकृतिवाद होगा और जितना प्रकृतिवाद सुन्दर होगा, परमाणुवाद सुन्दर होगा उतना ही प्रकृति से हमें किसी भी प्रकार की हानि प्राप्त नहीं हो सकेगी। इसलिए बेटा! महापुरुषों की आवश्यकता होती है। उनके जीवन दिवस को मनाने की इसीलिए उत्कृष्ट इच्छा होती है कि उनका कार्य हमारे समक्ष आता रहे, उनका जीवन और उनकी प्रतिभा से हम शिक्षा को अध्ययन करते रहें, पान करते रहें।

भगवान कृष्ण ने देखो महाराज कंस के नाना वीरों को बाल्यकाल में नष्ट कर दिया था। देखो महाराज इन्द्र की पूजा होती थी भगवान कृष्ण ने प्रजा से कहा कि इन्द्र की पूजा न करो, भगवान की पूजा करो। सब प्रजा ने उस महापुरुष की प्रतिभा को बाल्यकाल में ही स्वीकार किया। अन्त में महा-राजा कृष्ण ने कंस को भी नष्ट किया। नष्ट करके उसके पश्-चात् वह गुरु आश्रम में चले गए। गुरु आश्रम से पनपेतु ऋषि महाराजा के आश्रम में वह चले गए और द्वारिका का माता पिता को राष्ट्र अर्पित कर दिया। बेटा वह राज्य करने लगे। कंसो ब्रह्मं अपरातन् अपने नाना ब्रह कृति मानो उग्रसेन जो कंस के कारागार में था वह राज्य उन्हें प्राप्त हो गया। तो भगवान कृष्ण के जीवन में यह प्राप्त होता है कि यदि राष्ट्र नाना प्रकार के पापों से सुगठित है तो उस राष्ट्र को भी नहीं
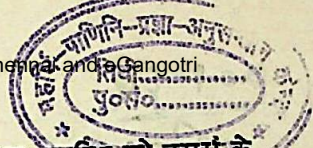
रहना चाहिए, उस राजा को नष्ट कर देना चाहिए जो दूसरों के अधिकारों को नष्ट करता है, दूसरों के सिंगारों को नष्ट करता है। दूसरों के अधिकारों को जो राजा लेता है वह राजा नहीं होता वह महान द्रोही होता है सब प्रजा का महापुरुषों का कर्तव्य है कि उस राजा को नष्ट भ्रष्ट कर दे। यह है बेटा! हमें जो उनके जीवन से शिक्षा प्राप्त होती है हमें वास्तव में उनकी जीवन चर्या से हमें अपने जीवन को उन्नत बनाना है। यह है आज का हमारा वाक्य। आज के हमारे वाक्य का अभिप्राय यह है कि हम राष्ट्रवाद में, विज्ञानवाद में, आध्यात्मिक हो, भौतिकवाद हो, मानो वह लोक लोकान्तरों की यात्रा भी अपनी आध्यात्मिक विज्ञान से करते थे और भौतिकवाद में भी उतने पारंगत थे। तो उनके जीवन से हमें यह प्राप्त होता है कि सोडश कलाओं को जानने से संसार की प्रत्येक वस्तु को, परमाणु को अच्छी प्रकार जान सकते हैं और हम विज्ञान में भौतिकवाद और अध्यात्मिकवाद में ऊंचे और पारांगत बन सकते हैं। यह है आज का हमारा वाक्य। अब समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चायें कल प्रकट करुंगा। अब वेदों का पाठ होगा।

२०-१-६५

श्री मान शास्त्री जी नमस्ते
प्रतिक्रमल मता रामनु मे आप
के यहा ६-२-६५ को आउगा
यज्ञ के लीये १०० कीलो
सामग्री और २० रु की साम
ग्री मोल लेनी है और
१० रु दान मे देना है
क्यो की यहा पर यज्ञ
इसी प्रकार होता है अती कृपा होगी
अ० कवरा दत्त

गुजराती प्रगती समाज हैदराबाद में प्रवचन की मुद्रा में

नम्र निवेदन

१. ब्रह्मचारी जी के प्रवचन सम्बन्धी विषय
अनुसन्धान कार्य के लिए वैदिक अनुसन्धान स
गया है। इस कार्य में सहयोग देने के लिए
जन सदस्य बनकर पुण्य के भागी बनें। सदस्य
मासिक १०) वार्षिक अथवा २५०) आजीवन
२. आस्तिकता का प्रचार एवं जनसाधारण व
करना भी समिति का लक्ष्य है। समिति के
विशाल महायज्ञ का आयोजन होता है।
३. ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के प्रवचनों का
सज्जन अपने यहां कराना चाहें वह समिति कार्यालय से पत्र व्यवहार करें।

४. ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों की इस समय तक उनीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। मूल्य प्रति पुस्तक १) २५ पैसें है। डाक खर्च अलग। पुस्तक विक्रेताओं को विशेष रियायत दी जायेगी।

५. समिति "यौगिक प्रवचन" नाम से एक मासिक पत्रिका भी निकालती है जिसका वार्षिक शुल्क डाक खर्च सहित केवल ८) रुपया है। अधिक से अधिक इस पत्रिका के ग्राहक बनकर समिति को अपना सहयोग प्रदान करें।

६. ब्रह्मचारी जी के २० प्रवचनों का अंग्रेजी अनुवाद भी "Yogic Wisdom af the Ancient Rishies" नाम से हो गया है। मूल्य केवल ५) रुपया।

वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि०)

III-ई-३१, लाजपत नगर नई दिल्ली-२४

कृष्णा प्रिंटर्स III-ई-३१, लाजपत नगर नई दिल्ली-२४